०५६।-
ह. ९३६.२ 12614
भारती पुस्तकालय

भूमिका।

चित्तविलास के पहिले भाग में दिखलाया गया है कि एक समय एक पुण्डरीक महाराज के पुरुषार्थ करके सम्पूर्ण भारतवर्ष विद्या के प्रकाश से प्रकाशित होगया, इसके दूसरे भाग में दिखलाया गया है कि उसी काल में एक हरिदास महाराज के पुरुषार्थ करके पशु पक्षी मनुष्य के कार्य करने योग्य होगये, और उनके आनन्द की प्राप्ति में उनके बड़े सहायक बने।

हे पाठकजनो! जब केवल दो पुरुषों के पुरुषार्थ करके इस देश की ऐसी उन्नति पूर्वकाल में होगई तो इदानींकाल में यावत् विद्वानों का समुदाय है यदि वे सब संयुक्त होकर इसके सुधार के लिये यथोचित प्रयत्न करें तो क्या सम्भव नहीं है कि यह दीन दुःखी भूमि माता फिर भी अपने चिरंजीवी बालकों को प्रमुदित देखकर प्रसन्नचित्त होती हुई सबके आनन्द का कारण बने।

मैं यह भली प्रकार जानता हूं कि मेरे लिखे हुये

ग्रंथ विद्वानों के विज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश में खद्योत सम हैं, पर जैसे शरदऋतु के कृष्णपक्ष की काली रात्रि में वृक्षों पर खद्योत प्रकाशते हैं, और अपने द्रष्टा को प्रिय लगते हैं, वैसेही ये ग्रंथ भी अविद्या के आश्रित अंधकार में खद्योत के तुल्य ऐसे प्रिय जगमगाते हैं कि इनका सामान्य विज्ञानी द्रष्टा इनको देखकर अतिप्रसन्न होजाता है, और कभी कभी ये खद्योत की तरह इत उत ऐसे सुहावने प्रकाशते हैं कि सज्जन विशेष विद्वान् पुरुषों को भी प्रिय लगते हैं जैसे निम्न सुन्दर रोला छंद आचार्य लक्ष्मिणदास महन्त नरसिंह देवालय जिला अमझेरा रियासत गवालियर कृत से प्रकट होता है।

छन्द—रोला ॥

१

बुधवर ईश्वर भक्त तत्त्व के जाननहारे।
सदाचाररत जनसमाज में परम उजारे॥
श्रीमन् जालिमसिंह उच्चपद के अधिकारी।
रांय बहादुर बृटिशमान्य युत परम सुखारी॥

९५६१

२

राज्य ग्वालियर के सुरत्न हैं आप कहाते।
ज्ञानवृद्ध अरु वयोवृद्ध सबही को भाते॥
कर करके सत्सङ्ग आपने सत को पाया।
जिसको पाया उसे आपने नहीं छिपाया॥

३

हमने कर सत्सङ्ग आपके मनको जाना।
बस ईश्वर के लिये आपका उर है थाना॥
परोपकारी सुहृद आप हमको दिखलाते।
चित्त आपकाहै दिखता अब एक ठिकाने॥

४

शील और सन्तोष नम्रता तुम में आई।
जगमगात अब भालबीच वहज्योतिसवाई॥
सुकृत आपके उदय हुए हैं अब वे प्यारे।
जिससे मिटते कठिन जगत् के बन्धन सारे॥

५

प्रश्न,केन,कठ,तैत्तरीय,मुण्डक,दुखनाशक।
ऐतरेय,माण्डुक्य,सांख्यकारिका प्रकाशक॥
ईशावास्य—उदार रामगीता, सुखकारी।

अष्टावक्र मुनीश सुगीता जो उचारी ॥

६

इन सबही की है कीन्हीं तुमने प्रिय भाषा ।
वह भाषा कि होरही जिससे सुखकी आशा ॥
बृहदारण्यक शीघ्र आप अब उसे छपावें ।
खूब सम्हलकर उसे ऐसेही सरल बनावें ॥

७

मैत्रेयी संवाद आपका अति उत्तम है ।
पर श्रीरामप्रताप मेटता भवका भ्रम है ॥
अजर अमर हों सभी विज्ञवर ग्रन्थ तुम्हारे ।
मिटें जिन्हों से बद्ध चेतनों के दुख सारे ॥

८

उत्साहित हो सदाचार ये बैन सुनाये ।
क्योंकि आपके मिलने से हमभी सुखपाये ॥
आप कौन हम कौन वही तो हैं सुखकारी ।
जिसकीजड़में प्रभा अहा! दिखतीनहिंन्यारी ॥

एक समय पवित्र नर्मदा नदी के दोनों तटों पर सघन हरित वृक्षों के ऊपर रंग बिरंग के पक्षी प्रभात होते ही सुरीले शब्दों से सृष्टिकर्ता महाप्रभु का गुणानुवाद आनन्दपूर्वक करने लगे, उनकी लगातार तानसेनी तानोंने उस किशोर को जगा दिया जो एक समीपस्थ स्फटिक शिलापर राग द्वेष रहित शयन कर रहा था, और जिसके मुखारविन्द पर मुखौष्ठलोम (मूंछ दाढ़ी) की नूतन सूक्ष्म रेखायें (लाेंं) निकलती हुई ऐसी प्रिय लगती थीं जैसे ज्येष्ठ मास के उत्तर पक्ष विषे मेघ जल के प्रथम बार गिरने से कोमल कोमल तृण शुद्ध धरणी पर निकलती हुई सुहावनी लगती हैं, और उन रेखों के ऊपर का अर्धभाग ऐसा शोभायमान दिखाई देता था जैसे चन्द्रमा का अर्ध-

भाग छितरे बितरे कपिश मेघों के बाहर निकला हुआ प्रिय दिखाई देता है, वह किशोर उठ बैठा, इधर उधर देखने लगा, अरुणोदय का समय आगया, सूर्य भगवान् तेरा देते हुए, और चारों तरफ़ अपने प्रकाश को फैलाते हुए ऊपर को चले आरहे हैं, पूर्व दिशा की ओर एक खंड ऐसा सुवर्णमय होरहा है, कि मानों सोने का सागर लहरा रहा है, आकाश में बादलों के ऊपर सुनहली किरणों के पड़ने से एक अद्भुत दृश्य दिखाई दे रहा है, कहीं मानों सुन्दर मकानों के ऊपर दीपक प्रकाश कर रहे हैं, और कहीं पर मकानों के आस पास हिम के ऊपर सुवर्ण के जल की लहरें कल्लोल कर रही हैं, ऐसे अनुपमेय दृश्य को देखकर उसका मुख प्रसन्न हो आया, पर क्षणमात्र में ही उस पर एकाएक श्यामता आगई, नेत्र डबडबा आये, चिन्ता ने आन घेरा, झटपट उठ खड़ा हुआ, आगे को चल पड़ा, वृक्षों के नीचे नीचे देखने लगा, उसकी उस काल की दशा बताती थी कि वह किसी अपने अतिप्यारे की खोज में अशान्त हो रहा है,

एकाएक एक जगह पर खड़ा होगया, उसके थोड़ी दूर पर एक वट वृक्ष के नीचे एक कुमार वैसा ही रंग रूप का आयु में दो वर्ष के लगभग बड़ा पद्मासन से बैठा हुआ ध्यान में मग्न दिखाई पड़ा, किशोर के हृदय सरोवर में प्रेम की तरंगें उठने लगीं, उसने चाहा कि उस कुमार से लिपट जाय, पर बुद्धि ने रोका, और कहा कि यह समय ऐसा करने का नहीं है, वह किशोर चुप चाप कुछ काल तक खड़ा रहा, थोड़ी देर के पीछे कुमार समाधि से बाहर आया, किशोर को देखा, अपने को रोक न सका, एकाएक उसके भी हृदयरूपी गिरि से सच्चे प्रेम की नदी उमँग कर नेत्र द्वारा बह निकली, और अभिमुख मार्ग से दूसरी वैसेही प्रेम की नदी किशोर के वक्षःस्थलरूपी पहाड़ से निकल कर उससे जा मिली, दोनों परस्पर कल्लोल करने लगीं, कुछ देर तक योंही रहा, दोनों बालक अवाच्य होकर खड़े रहे, जब दोनों नदियाँ क्रीड़ा करती करती थक गईं तब शान्त हो गईं, और उनके शान्त होने पर वाणी अपना शाब्दिक व्यवहार करने

लगी, हे पाठकजनो ! इन दोनों कुमारों को विशेषण से युक्त करके आपलोगों की चिन्ता को शीघ्र निवारण करता हूं. ये दोनों सहोदर भ्राता हैं, बड़े का नाम हरिदास और छोटे का नाम चन्द्रकान्त है, इनका पिता सूरसेन मगध देश का राजा है, और इनकी माता का नाम सुलोचना है. हरिदास ने राज के राग से विराग होकर जंगल की राह ली, और चन्द्र-कान्त माता पिता को उसके वियोग से दुःखी पाकर अपने प्रिय भ्राता के अन्वेषण में अकेला जंगल की तरफ़ चला।

दैवगति से थोड़े ही दिन व्यतीत होने पर पवित्र नदी नर्मदा के तीर पर ऊपर कहे हुए प्रकार दोनों का मिलाप होगया, उनके प्रेम से सनी हुई मीठी मीठी आनन्द की देनेवाली वार्तालाप को नीचे लिखता हूं, आपलोग शुद्ध चित्त से सुनें। नेत्र से निकल कर कमल कपोलों पर जल की धारा लगातार बह रही है, शरीर कम्पायमान होरहा है, ओष्ठ बिम्बवत् सूख रहा है, मुखारविन्द पर उदासी छाई

हुई है, जी डर रहा है, ऐसी दशा में होता हुआ चन्द्रकान्त हाथ जोड़ कर अपने भ्राता से कहता है, हे कमललोचन! आपके माता पिता आपके वियोग में अतिव्याकुल हो रहे हैं, आंसुवों की धारा नेत्रों से वह रही है, शरीर विह्वल और कृश हो गया है, धरणी पर पड़े रहते हैं, जब आपके रंगमहल को उजड़ा हुआ देखते हैं तो शिर धुनने लगते हैं, सर्पग्रस्त दादुर की तरह सांस लेते हैं, और आपका नाम ले लेकर रुदन करने लगते हैं, वह उनका दुःख मैं न देख सका, भाग निकला, दोनों तरफ़ की अग्नि में तप्त होरहा हूं, उधर उनका दुःख, इधर आप का वियोग मेरे स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों को भस्म कर रहे हैं, जब मैं आपके उस राजसी ठाठ को जिसको आप राजभवन में भोग करते थे अनुभव करता हूं, और उस समय के सुख की अपेक्षा इस काल के दुःख को देखता हूं तो मेरा हृदय कांप उठता है, मन घबरा जाता है, कहां सुवर्ण के पलँग पर सोना, सोने चांदी की कुर्सियों पर बैठना, सहस्रों दास दासियों करके

सेवित होना, अनेक प्रकार की सवारियों पर चलना, कहाँ यह कठोर वस्त्रहीन भूमि पर शयन करना, हे भ्राता! दैवकी गति निराली है, पलक भरमें रंक कुवेर बन जाता है, और कुवेर द्वार द्वार भीख मांगने लगता है, यह सुनकर हरिदास अपने छोटे भाई से कहते हैं हे भ्राता! तू क्यों ऐसा सोच करताहै, तू न मेरेप्रारब्ध को मेट सकता है, और न मैं तेरे को, जैसे जैसे हम लोगों ने कर्म किये हैं उसके अनुसार फल को भोग रहे हैं, और भोगते रहेंगे, जिसको तू दुःख समझता है, उसको मैं सुख समझता हूं, और जिसको तू सुख समझता है उसको मैं दुःख समझता हूं, दुःख सुख मन के धर्म हैं, जैसा मन मान लेता है वैसा ही प्रतीत होने लगता है, देखने में माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, कलत्र, नौकर, चाकर, राजकाज सुख के सदन हैं, परन्तु वास्तव में दुःखरूप हैं।

देखो माता पिता का धर्म पुत्र को संसारसागर से तारने का है, उसको ऐसा उपदेश देना चाहिये कि वह संसारी विषय को विष्ठा जान के उसकी तरफ़

कभी भी मन को न लगावे, उसके चित्त की वृत्ति सूक्ष्म होकर अहर्निश ब्रह्मानन्द सागर की ओर गंग-धारावत् बहती रहै, पर ऐसे माता पिता कहां होते हैं, वे तो लड़के का लालन पालन इस निमित्त करते हैं कि जब वह युवावस्था को प्राप्त होवै तो धन उपार्जन करके कुटुम्ब का पालन पोषण करै, और गृहस्थाश्रम को धारण करके पुत्र पुत्री को उत्पन्न करै ताकि उन करके फैलाये हुए जाल में वह फँसा रहै।

पुत्र का भी धर्म पिता के उद्धार करने का है, पर जीवित अवस्था में तो उसको फँसाये रहता है, मरने पर स्वर्ग में भेजने का यत्न करता है, वैसे ही स्त्री भी करती है, ब्रह्माजी ने अपने वंश चलाने के लिये दश मानसिक पुत्रों को उत्पन्न करके उनको गृहस्थी बनाने और सृष्टि चलाने की इच्छा की थी, पर नारद के उपदेश करके उन्होंने जंगल की राह ली, भगवत् का आराधन करके जन्म मरण के दुःखों से बचगये, हे भ्राता! संसारी सुख दुःखरूप है, इससे भागनाही उचित है, हे चन्द्र! धन, यश, दान, तप और

विद्यादिकों करके पुरुष पूज्य नहीं होता है, ऐसा तब होता है जब उसकी सभ्यता सराहनीय होती है, यदि कोई धनी है पर सदाचारी नहीं है तो वह अयशी है, यदि राजा है पर व्यभिचारी है तो वह दुष्ट है, यदि याज्ञिक दानी तपस्वी है पर कुमार्गी है तो उसके सम्पूर्ण कर्म अकृत्य हैं, यदि विद्या करके संपन्न है पर उसका आचरण दूषित है तो वह अपूज्य है, क्योंकि उस का चालचलन ही दूसरे के सुख दुःख का कारण होता है, हे चन्द्र ! जब मनुष्य शरीर त्यागता है तब उसके साथ केवल उसका कर्मही जाता है, न माता, न पिता, न भाई, न भतीजा, न पुत्र, न कलत्र, शुभ कर्म से शुभ आचरण और अशुभ कर्म से अशुभ आचरण बनता है, शुभ कर्म ही पुरुष को स्वर्गलोक को ले जाता है, और अन्त में अन्तःकरण शुद्ध होने पर उसको मुक्त कर देता है, अशुभ कर्म नरक को ले जाता है, हे चन्द्र ! मेरे प्रारब्ध में अरण्य का राज है। तेरे कर्म में देश का राज है, जो जिसकी क़िस्मत में होता है वही उसको

मिलता है, और उसको उसी में सुखी रहना चाहिये। मेरी गूंगी वाहिरी प्रजा जंगली जीव हैं, उनके दुःख को मैं नहीं देख सकताहूं, उसका दूर करना किसी न किसी प्रकार मेरा परम धर्म है, किसी काल में इनमें से बहुतेरे मनुष्ययोनि को प्राप्त थे, पर काम के वश होकर पाप कर बैठे, और ऐसी गति को प्राप्त होगये। मुझको ऐसा अनुभव होता है कि मेरे उपदेश को सुनकर ये सब अपने पूर्व निर्मल योनि को प्राप्त होंगे, और उससे जो उनको आनन्द मिलेगा वह मेरे अतुल आनन्द का कारण बनेगा। हे चन्द्र! तुझे यह सोचहै कि मुझको खाने पीने और नौकर चाकर के न होने से दुःख है सो नहीं, आज मध्याह्न समय देख लेना कौन कौन मेरे पास आते हैं, और क्या क्या लाते हैं, इसके पश्चात् दोनों भाई बैठ गये, चन्द्रकान्त थोड़ी देर के पीछे क्या देखता है कि चारोंओर से आह्लाद का शब्द करते हुए बन्दर, भालू, हाथी, घोड़े, मृग, गाय, बैल, नाहर, केहरि, पशु, पक्षी आदि अपनी अपनी रुचि अनुसार फल फूल लिये हुए चले आते हैं, उनको देख कर वह चन्द्र

डरा, और भागने का विचार किया, पर अपने बड़े भ्राता के परितोष से बैठा रहा, हरिदास के आस पास सब जीव आन कर बैठ गये, और लाई हुई वस्तु को उसके आगे रखदिया, दो हाथी कमण्डलु लेकर पानी नर्मदा नदीमें से भर लाये, और बन्दर घास फूस और अग्नि ले आये, हरिदासने पानी का कमण्डलु ले लिया, और घास फूस में अग्नि द्वारा फल को पकाया, आप खाया, और चन्द्र को खिलाया, उस स्वाद को पाकर चन्द्र राजभोग को भूल गया। जब तक वे खाते रहे, सब जीव बैठे रहे, जब दोनों भाई खाचुके तब हरिदास ने उनको एक अध्याय गीता का पाठ सुनाया, वे बड़े हर्ष के साथ शान्त होकर सुनते रहे, और आज्ञा पाकर सबके सब वापस चले गये, यह देखकर चन्द्र चकित होगया, अपने भाई के पैर पर यह कहते हुए गिर पड़ा, कि हे भ्राता! आपमें तो दैवीशक्ति है, हरिदास अपने भाई से कहते हैं कि हे चन्द्र! यह चित्ताकर्षणी शक्ति प्रेम है, यह अमोघ प्रभाववाली कठिन लोहे को मोम कर देती है, घाव को भर देती है, अवश को वश में

लाती है, अनहोनी को होनी कर दिखाती है, हे चन्द्र! सुन तू मेरा छोटा भाई है, हम दोनों साथ साथ खेले हैं, हम दोनों ने साथ साथ विद्याध्ययन किया है, साथ साथ सोये हैं, और साथ ही साथ खान पान किये हैं, पर राजपदवी की प्राप्ति विषे तू मुझ से अलग रहकर मेरी सेवा तेरा धर्म होता, क्योंकि मैं तुझ से आयु में बड़ा हूं, सो यह दुःख मुझ से देखा न जाता, इसलिये मैंने देश का राज तेरे निमित्त छोड़ दिया, और वन का राज मैंने विना आज्ञा पिता के स्वीकार किया, और ज्येष्ठ की दशमी को जिसको दशहरा भी कहते हैं मैं नर्मदा के तीर पर अपनी तरफ़ से तेरा राज्याभिषेक करूंगा, और अपनी समीपस्थ प्रजा को उस उत्सव में बुलाऊंगा, जिनके देखने से तुमको बड़ा आनन्द मिलेगा, और तेरे राज-प्रबन्ध में सुखदायक होगा।

दूसरे दिन जब मध्याह्न का समय आया सब पशु पक्षी हरिदास महाराज के दर्शनार्थ आये, और जब वे सेवा सत्कार कर चुके तब उनसे चन्द्रकान्त के

राज्याभिषेक होने की इच्छा को प्रकट किया, उसे सुन कर उन्होंने शिर को हिलाया, जिससे ज्ञात हुआ कि वे महाराज के मतलब को समझ गये। विजय दशमी के दिन दोनों भाई नदी के तटपर जाकर क्या देखते हैं कि पशु पक्षी खड़े हैं, अनेक प्रकार की लाई हुई वस्तुएं सामने रक्खी हैं, हरे भरे वृक्षों को एक दूसरे से मिला कर और वेलों से बांध करके यज्ञमंडप अतिसुहावना बना रक्खा है, उसके अन्दर भांति भांति के कुशासन बिछा रक्खे हैं, दिव्य पुष्पों की मालायें लटक रही हैं, बहुत रंग की चिड़ियों ने अपने खोतों को ऐसा सुन्दर बना रक्खा है कि मानों मणियों से जड़ी हुई कंडीलें लटक रही हैं, और उनके अन्दर बैठ कर ऐसे सुहावने शब्द करती हैं कि मानों उनके आगे मयंकमुखी गृहस्थनारियां मंगल के गीत गारही हैं, और उनके आगे मोर मोरनी के साथ जिनके कोमल चमकीले परों में अनेक बुन्दे सूर्यवत् प्रकाशमान हैं, मस्त होकर नृत्य कर रहे हैं, मंडप का छत्र जो श्वेत पीत तृणों से बना है, और जिनके बीच बीच में

हरे नीले रंगके खिले फूल पत्तियों के बेल बूटे रचे गये हैं, वह ऐसा दर्शाता है कि मानों चांदी सोने के तारोंका छत्र बनाया गया है, और हीरे, पन्ने, पुखराज, नीलम आदि उसमें जड़ दिये गये हैं, यह स्वाभाविक कारीगरी पक्षियों की मनुष्यों की कारीगरी को मात करती है, और साबित कर दिखलाती है कि उनका अहंकार अपनी बुद्धिमत्ता पर वृथा है।

नाहर का गर्ज समय समय पर बताता है कि उत्साह के याद में तोपों की सलामी हो रही है, जल के सब कार्य कुंजर कर रहे हैं, अपने सूंड़ों और पैरों से अतिविचित्र अनेक सड़कें मंडप से नदी तक बनादिये हैं, घोड़े पंक्ति बांधे ऐसे प्रसन्न चित्त से खड़े हैं कि मानों हर्ष में किसी प्रियको अपने पीठ पर बैठाल कर ऊपर को उड़नेवाले हैं, ऊंट पंक्ति बांधे खड़े हुए ऐसे प्रतीत होते हैं कि होली की मस्ती उनके मुखों से बल-बल की शब्द निकाल रही है, हंस हंसनी के जोड़े एक दूसरे के प्रेम में चूर चूर होकर कल्लोलें कर रहे हैं, और यह उनका रास सूचना करता है कि स्त्री पुरुष का साथ

कैसा आनन्द का सदन बनाता है, इन जीवों के आनन्द के हाल को लिखने में मेरी लेखनी डगमगाती है, आगे नहीं चलती है, इतनाही लिखना बस होगा कि उनके उस समय का आनन्द अनुपमेय है।

जब हरिदास महाराज ने अपने लघु भ्राता को बड़े हर्ष के साथ पुष्पसिंहासन पर बैठाला, और वेदमंत्रपढ़ कर आशीर्वाद दिया तो उस काल का आनन्द स्वर्गीय आनन्द से कहीं बढ़ा चढ़ा [illegible] सब जीवों ने आन आन कर उनके सामने दंडवत् प्रणाम किया, और अपनी अपनी स्त्रियों के साथ नृत्य करके अबाध्य सुख को उठाया, इस शिष्टाचार होजाने के पीछे बड़े भाई ने छोटे भाई को इस प्रकार उपदेश किया, हे चन्द्र ! मैंने तेरा अभिषेक पिता के होते हुए जिस कारण किया उसको तू सुन, यदि तू अपनी प्रजा को अपने वश में रखना चाहता है तो शुद्ध और उदार चित्तवाला हो, प्रेम को बढ़ा, उनके सुख दुःख को अपने सुख दुःख के ऐसा अनुभव कर, स्त्रीमात्र को अपनी माता दुहिता और भगनी जान, उनके साथ उनके ऐसा होकर रह,

उनके धनको मनःशिला तुल्य जान, जो देखने में प्रिय
और खाने में मृत्यु का बुलानेवाला है, देख मेरे शुभ-
चिन्तक और सच्चे प्रेमने क्या कौतुक दिखाया है, सब
के सब जीव मेरे वश में हैं, मेरी इच्छानुसार चलते हैं,
परस्पर के राग द्वेष को त्याग कर दिया है, किसी में
इर्षा नाममात्र भी नहीं है, भयरहित होना सुख का
कारण है, भय भीत होना दुःख का मूल है, मैं निडर
होकर इन सबके साथ घूमता फिरता हूं, और ये भी
भयरहित होकर मेरे साथ रमण करते हैं, इनको यह
मालूम है कि मैं इनका भला चाहनेवाला हूं, और मैं
यह समझता हूं कि ये मेरे शरीर के अंग हैं, मेरा इन
का अंगांगीभाव है, सब जीव प्रेम के भूखे होते हैं,
जबतक राजा प्रेम का जल प्रजा के अन्तःकरण में
नहीं डालता है, और जबतक प्रजा के प्रेम का जल
राजा के अन्तःकरण में नहीं पहुँचता है तबतक दोनों
में मित्रभाव नहीं होता है, इसके विपरीत शत्रुता
आजाती है। हे चन्द्र ! राजा को दण्ड देने का अधिकार
है, परन्तु दण्ड देना केवल सुधार के निमित्त होता है,

उतनाही दण्ड देना चाहिये जितने में अपराधी सुधर जाय, जैसे पिता पुत्र की भलाई के लिये ताड़ना करता है, उसके बिगाड़ के लिये नहीं ।

अब तू इस मेरे प्रत्यक्ष दृष्टान्त को देख कर राज-काज कर, और माता पिता को मेरी तरफ़ से जो शोक हो रहा है उससे उनको अशोक कर, कल तू राज-भवन को जा, यह सुनकर चन्द्रकान्त अतिप्रसन्न हुआ, और भाई से कहा कि मैं आपकी आज्ञा-नुसार वर्तूंगा ।

दूसरे दिन चन्द्रकान्त हरिदास से बिदा होकर राजभवन को चला, और जब वहां पहुँचा माता पिता को शोकातुर पाया, चन्द्रकान्त को देखकर उनका मुखारविन्द हरा भरा होगया जैसे सूखे धान पानी से हरे हो जाते हैं, चन्द्र ने सब वृत्तान्त कह सुनाया, माता पिता ऐसे आनन्द को प्राप्त भये जैसे अन्धा नेत्र के पाने से होता है, राजा रानी ने विचार किया कि शीघ्र राज्य चन्द्रकान्त को देकर वन को चलना और शेष आयु को ईश्वराराधन में लगाना

उचित है, और ऐसेही शुभ दिन शुभ लग्न में किया भी गया, जब राजा चन्द्रकान्त राजगद्दी पर बैठा, और अपने भाई हरिदास के उपदेश का हाल सुनाया, और सबके सामने उसके अनुसार बर्तने की प्रतिज्ञा की, तो सब प्रजा बड़े हर्ष को प्राप्त हुई, प्रेम का डंका बजा, भय भागा, निडर होकर राजा प्रजा अपना अपना धर्म करने लगे, गौ और सिंह एक घाट पर आनन्दपूर्वक जलपान करते हैं, सतयुग सत्य बर्त रहा है, विद्या की उन्नति, धर्म की वृद्धि होने लगी, काल काल पर वर्षा होती है, और ऋतु ऋतु में अन्न उत्पन्न होता है, वेदों के अनुसार अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान चारों तरफ़ है, अन्नकोष्ठक भरा पड़ा है, रोग से सब नीरोग, और शोक से अशोक हैं, केवल मृत्यु महाराज को कुछ कुछ सोच है, इस बात का कि इस राजा के राज्य में मेरी दाल नहीं गलती है, सब हट्टे कट्टे बने हैं, जिधर देखता हूं उधर धूम धाम मच रही है, प्रेम का सागर लहरा रहा है, बस प्रेम के मारे हरी होरही है, प्रेमही करके फूल फूल रहे

हैं, वृक्ष फल देरहे हैं, अन्न पृथ्वी में से अंकुर दिये हुए ऊपर को चला आ रहा है, नदी नाले प्रेम की प्रेरणा करके समुद्र से आलिंगन करने के लिये चले जा रहे हैं, प्रेम के वायु के वेग करके सम्पूर्ण वनस्थलियां एक दूसरे से हिल मिल कर आलिंगन कर रही हैं, प्रेम की प्रेरणा करके जल पृथ्वी विषे, तेज जल विषे, वायु तेज विषे, और आकाश वायु विषे व्याप्त हो रहे हैं, तारागण प्रेम के मारे एक दूसरे के इर्द गिर्द दौड़ रहे हैं, प्रेम के मारे सूर्य चन्द्र एक दूसरे के पीछे चले जा रहे हैं, प्रेम में आकर समुद्र चन्द्रमा की ओर उछल रहा है, जहां प्रेम है, वहीं सब कुछ है, जहां प्रेम नहीं वहां कुछ नहीं, प्रेम जाति पांति का कुछ विचार नहीं करता है, न यह सुन्दरता की तरफ़ जाता है, न कुरूपता से भागता है, प्रेम प्रेमीही की तरफ दौड़ता है, प्रेम न धन चाहता है, न मान चाहता है, न प्रतिष्ठा, प्रेम कहां से आया है कोई कह नहीं सकताहै, विचारते विचारते यही प्रतीत होता है कि यह परमात्मा का एक अंश है, सब

में बराबर है, पर गुप्त रहता है, जब समान रूप से विशेष अंश को प्राप्त होता है, तब आगे पीछे ऊपर नीचे दाहिने बायें चारों ओर प्रेम का धार बह चलता है. प्रेम की वृत्ति अहर्निश लगातार अपने लक्ष्य की ओर लगी रहती है, उस लक्ष्य के सिवाय प्रेमी को कोई और वस्तु न दिखाई देती है, वह लक्ष्य को देखते देखते स्वतः लक्ष्यरूप होजाता है, प्रेम का मज़ा प्रेमी को ही मिलता है, दूसरे को नहीं।

इसकी अपेक्षा ज्ञान वैराग्य सब फीके पड़ जाते हैं, ज्ञान आदिक इस प्रेम के साधक हैं, यह अतुल्य प्रेम ज्ञान के पश्चात् होता है, इसकी महिमा लिखने को मैं अशक्य हूं, इतना ही कहना बहुत है कि चन्द्रकान्त ने अपने चन्द्रमुख से प्रेमरूपी अमृत की वर्षा देशों में करके जीवोंको तृप्त कर दिया, और माता पिता और भ्राता को अपने धर्मयुक्त राज्यप्रबन्ध से अविनाशी सुख दिया।

चन्द्रकान्त के राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् उनके माता पिता ने राजभवन को त्याग जंगल की राहली

जहां हरिदास तप करते थे, और जब पहुँच कर उनके सामने खड़े होगये, उस समय हरिदास के प्रेम का स्रोत हृदय में से नेत्र द्वारा ऊपर को निकल पड़ा, और उछल कर उनके चरणों को धोया, जब नेत्रों के जल का प्रवाह बन्द हुआ, तब वह हाथ जोड़ कर कहने लगा, हे जननी, जनक! मैं आपके सुखसदन होने के बदले में दुःख का कारण बना, यह मेरा शरीर इस लिये त्यागने योग्य है, कारण मेरे इस वन में आनेका यह है कि मेरे अन्तःकरण में एकाएक एक ऐसी वृत्ति उठी कि जब जीवमात्र सब बराबर हैं तो क्यों जंगली जीव अपनी उन्नति नहीं करसकते हैं, सोचते सोचते यह विचार मेरे मन में आया कि यदि उनकी शिक्षा वैसेही दीजाय जैसे मनुष्य के बालकों को दीजाती है तो वे भी कुछ न कुछ उन्नति अवश्य करसकते हैं, इन दीन दुःखी जीवों के सुधारने के निमित्त मैं घर से भाग निकला, और यह व्रत मैंने धारण किया है कि जब तक इनका यथायोग्य कल्याण नहीं होजायगा तब तक मैं इनका साथ न

छोड़ूंगा, हे माता! यह मेरी प्रतिज्ञा न छूटेगी, चाहे इस शरीर के सहस्रों टुकड़े होजावें, अब आप कृपा करके मुझको इस प्रण में दृढ़ करें माता लड़के को छाती से लगाकर कहने लगी हे वत्स! क्या तू समझता है कि मैं मातृधर्म से विमुख होकर अपने ही प्रिय पुत्र को नरक में जाने की कारण बनूंगी, माता का धर्म पुत्र को सुख देने का और दुःख से निवृत्त करने का है मैं जानती हूं कि प्रतिज्ञाहत पुरुष संसार में अयशी बनता है, और शरीर त्यागान्तर नरकगामी होता है. हे प्यारे पुत्र! तू अपने वचन को भली प्रकार पालन कर, और मैं भी तेरी इस श्रेष्ठ धर्म के पालन में सहायक बनूंगी, और तेरे साथ निवास करूंगी, हे पुत्र! ये बिचारे जीव मुझे ऐसेही प्रिय हैं जैसे तुम दोनों पुत्र।

यह सुनकर हरिदास अति आनन्द को प्राप्त हुआ, और कहने लगा कि हे माता! तेरे ऋण से मैं कभी नहीं उद्धार होसकता हूं. जो सेवा तूने मेरी बचपन की बेवशी की हालत में सहस्रों दास दासियों के होते हुए भी की है, उसका बदला मैं सैकड़ों जन्मों में भी

नहीं देसकता हूं, तूने अपने निज वक्षःस्थल का दूध मुझे पिलाया, यह सोच करके मेरे क्षत्रिय धर्म में अधर्म, जब मैं युवा को प्राप्त हूं, कहीं न आजाय, जिससे चन्द्रवंशरूपी चन्द्रमा पर कलंकरूपी राहु की छाया न पड़ जाय, इस आपकी शुभ इच्छा को मैं पूर्ण करूंगा, और अपने और अपने भाई चन्द्र के शत्रु काम क्रोध मोह लोभ को .ार गिराऊंगा, और जीवमात्र को उनसे निर्भय करदूंगा । पिता और माता दोनों हँसपड़े, और कहनेलगे कि हे पुत्र ! हमको निश्चय है तू ऐसाही करेगा, और तेरे बाहुबल को संसार पूजेगा, और तुम दोनों के यश का चन्द्रमा संसार में चमकता रहेगा, थोड़ी देर के पीछे सध्याह्न का समय आया, सब पशु पक्षी प्रसन्नचित्त होते हुए हरिदास और उनके माता पिता के सामने अपने स्वभाव के अनुसार दंडप्रणाम करके बैठगये, और लाई हुई वस्तु को रख दिया, और उनके माता पिता का वर्ताव को देख उनका चेहरा और दिन की अपेक्षा प्रफुल्लित होगया, यह चेहरा अन्तःकरण की एक

प्रतिमा है, जब अन्तःकरण शुद्ध और सुखी होता है तब चेहरा भी सुन्दर और सलोना दिखाई देता है, जैसे हरे भरे वृक्षों के फल फूल पत्तियाँ मेघ की वर्षा होजाने पर और गर्द गुबार के गिरजाने से सुहावनी और मनोहारिणी लगने लगती हैं, जो कंद मूल पशु पक्षी लाये थे वह हरिदास की आज्ञानुसार पकाये गये, और सब उनको खाकर तृप्त होगये इसीप्रकार बहुत दिन तक भोजन हुआ किया, फिर शनैः शनैः विद्वान् ब्राह्मणादि आन कर वहां तप करने लगे, जिस कारण से वह जंगल मंगल होगया।

प्रतिदिन एक ओर से शंखध्वनि, दूसरी ओर से सिंहनाद, तीसरी ओर से हाथीचिंघार, और इन्हीं से मिली हुई चित्तहारिणी नर्मदा महारानी की हरहराहट व गरगराहट का शब्द रात्रि समय एक रोमांचित आनन्द को उत्पन्न करता था, एक समय ऐसा हुआ कि कृष्णपक्ष अष्टमी को अर्धरात्रि के उपरान्त जब काली घटायें चारों ओर छा रही थीं अरण्य के कई स्थानों से एकाएक विद्युत् तड़क करके चारों

कोनों को प्रकाश करती हुई ऊपर जाकर काले मेघों में तिरोभाव को प्राप्त होगई, हरिदास और उनके माता पिता आदिकोंकोइस अद्भुत दृश्यसे वड़ा आश्चर्य हुआ, और सवके सब अचेष्ट अवाच खड़े रहगये, प्रातःकाल मालूम हुआ कि वहुतेरे कुंजर सिंह आदि जीवों के मृतक शरीर पवित्र नदी के तट पर पड़े हैं, जिससे सूचित होता था कि इन्हींके चेतन जीवात्मा तड़ित् की सूरत में प्रकाश करते हुए स्वर्गलोक को चलदिये, पर ये कौन थे और किस कारण करके पशुयोनि को प्राप्त हुए किसी को ज्ञात न हुआ, दो तीन दिन पश्चात् यह विस्मययुक्त समाचार राजा चन्द्रकान्त को पहुँचा, वह शीघ्र माता पिता और वन्धुदर्शनार्थ चले, और जब अरण्य के निकट पहुँचे, सवारी से उतर पड़े, पैदल हो लिये, सायंकाल होते होते माता पिता और भ्राता के पास पहुँच गये, उनका चरणोदक लिया, और वृत्तान्त जीवों के शरीर छूटने का सुना, और सुनकर वड़े आश्चर्य को प्राप्त भये, अर्धपक्ष तक रहकर प्रतिदिन राज्यप्रबन्ध का हाल अपने भाई

हरिदासजीको सुनाते रहे, उसको सुनकर वह अति-
प्रसन्न हुए, और राजा को वापिस जाने की आज्ञा दी,
और जाते समय अनेक प्रकार के पक्षी जिनके परों की
सुन्दरता अनुपमेय थी, उनके साथ करादिये वे आ-
काशमण्डल में पर जमाये हुए राजा के आगे आगे
ऐसी खूबसूरती के साथ चले जाते थे जैसे रिसालों के
सवार घोड़ों पर व्यूह में जाते हों, जब राजा राजमहल
में पहुँचा, एक सुन्दर मकान उनके रहने के वास्ते दिया
गया, और अनेक प्रकार के खाने पीने की चीजें उसमें
रखवादी गईं, कुछ काल के पश्चात् एक रात्रि को एक
कपोत ने अपनी स्त्री कपोती से कहा, हे प्यारी! जैसे
तेरे विना यह अद्भुत संसार मुझ को दुःख रूप प्रतीत
होता है, वैसेही विना मेरे तेरा भी हाल होता है, हे
सुलोचने! विना जोड़े के जीवन का मज़ा नहीं, जि-
धर दृष्टि उठाकर देखता हूं उधर स्त्री पुरुष का जोड़ा
दिखाई देता है, सुन जब ईश्वर ने सृष्टि रचने का
विचार किया तो प्रथम अपने को ही दो रूप पुरुष
प्रकृति करके प्रकट किया, इसी लिये यावत् सृष्टि है

सब स्त्री पुरुष के संयोग करके है। देख ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यक्ष, राक्षस, देव, गन्धर्व, मनुष्य, जीव, जन्तु, वनस्पति आदि सब अपनी अपनी शक्ति के धारण करने से ही शक्तिमान् होरहे हैं, शक्तिहीन जीव अपूज्य होता है, ऐसी संसार की नीति देखकर मुझको इस कारण खेद होता है कि इस धर्मज्ञ राजा चन्द्रकान्त को जो सुन्दरता शूरता शीलता और बुद्धिमत्ता आदि गुणों में अद्वितीय है बिना चन्द्रवदनी मृगलोचनी रानी के क्या सुख होगा, यह राजसामग्री उसको वैसेही दुःखदायी है जैसे चन्द्रनिशा विरहिनी को पति के वियोग में दुःखदायी होती है, मेरा धर्म है कि मैं इस राजा के मुर्झाये हुए दिल को हरा भरा और इसके व्याकुल चित्त को शान्त करूं ताकि इसको राज पाट प्रिय लगे, और देश की उन्नति होवे, क्योंकि राजा के दुःखी होने से प्रजा भी दुःखी, और राजा के सुखी होने से प्रजा भी सुखी होती है।

कपोती—हे प्यारे! जो आप कहते हैं सो ठीक है, पर आप पक्षी हैं, आप मनुष्य का और मनुष्यों में राजा

का उपकार कैसे करसकते हैं, छोटी जीभ बड़ी बात का मामिला न करें, जो कहता बहुत है, पर करता कुछ नहीं, वह मार खाता है, कहीं चींटी भी पर्वत को उटा सकती है ? ।

कपोत—तू स्त्रीजातिवाली है, तू पुरुषों के पराक्रम और साहस को क्या जानती है, पुरुष जिस काम की इच्छा करता है कर दिखाता है ।

समुद्र को सुखा सकता है, और पहाड़ को ढहा सकता है, जिसने समुद्र को नीचा दिखाया वह कौन था, एक दुबला पतला टिटिहा, जिसकी आख्यायिका संसार विषे विख्यात है, विष्णु महाराज संग्राम में किसके बल करके शत्रुओंको पराजय करते रहे, रामचन्द्र की स्त्री श्रीजानकी महारानी के छुड़ाने में रावण ऐसे बलवान् के साथ युद्ध करके शरीर को तृणवत् किसने त्याग दिया, क्या तू नहीं जानती कि ये सब पक्षी ही तो थे, तू अब मेरे बल को देख, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि एक साल के अन्दर अतिप्रिय कमलनयनी कोकिलवयनी चन्द्रमुखी राजकन्या लाकर इस राजा

की रानी न बना दूं तो अपने शरीर को अग्नि में दग्ध करदूंगा।

कपोती–हे प्यारे पति! यद्यपि मैं आपकी अनुचरी हूं, पर आपकी सेवा से मुझको वह पातिव्रत बल प्राप्त है कि यदि मैं इच्छा करूं तो तारागण के छत्ते के छत्ते दृष्टि उनकी तरफ डालते ही ऐसे अशक्त होकर भूमंडल पर गिरें जैसे मधुमक्षिका के छत्ते पेड़ों पर से नीचे को गिरते हैं, पहाड़ चूर चूर होकर अणु परमाणु की सूरत में आकाशमंडल विषे उड़ते फिरें, समुद्र सूख जाय, अग्नि शीतल होजाय, जल जलने लगे, कौन ऐसा कार्य संसार में है जो पतिव्रता स्त्री अपने धर्म के बल से नहीं करसकती है।

आपको क्या विदित नहीं है कि असुरों की जय केवल उनकी स्त्री के पातिव्रत्य धर्म के बल से होती रही, सावित्री ने अपने पति को अपने धर्म के बल से मृत्यु के पाश से छुड़ा लिया था, मैं आपके साथ साथ रह कर आप के वांछित कार्य की सिद्धि में आपकी सहायक यथाउचित बनूंगी, मैं भी प्रतिज्ञा करती हूं

कि यावत् यह मेरा शरीर रहेगा तावत् मैं आपके कार्य में आपकी मदद करती रहूंगी, आप भोजन करें, कमर बांधें, मैं तैयार हूं, हे प्यारे पति ! वह प्रजा अधर्मी होती है जो अपने राजा का कल्याण नहीं चाहती है, जैसे राजा का धर्म प्रजा के सुख देने का है, वैसेही प्रजा का भी धर्म राजा के सुख देने का है।

इस राजा का मैंने और आपने अन्न खाया है, और इसके भ्राता हरिदास ने हमारे पक्षीमात्र को अपना सच्चा प्रेम दिखा कर अभय करके उनको सत् मार्ग में लगाया है, जो सेवक अपने राजा, या मालिक की सेवा दिल से नहीं करता है, या उसकी आज्ञाविरुद्ध चलता है, या उसके राज्यकार्य को बिगाड़ना चाहता है, वह यहां दुःखी और वहां नरकी होता है।

कपोत—मैं जानता हूं तू शुद्ध अन्तःकरणवाली मेरी प्रिय स्त्री है, तू ने अपने दिल में कभी अशुभ वासना के अंकुर को जमने ही नहीं दिया, तू मुझको प्राणों से अधिक प्यारी है, तेरे साहस को मैं कई वार देख चुका हूं।

जहां स्त्री पुरुष दोनों दिल लगा करके किसी काम को करना चाहें वह कैसे सिद्ध नहीं होसकता है, यदि इस विचारे हुए कार्य में अपना अमूल्य जीवन भी जाता रहे तौभी हम दोनों को आनन्द ही है, सुयशी और सुकृती स्त्री पुरुष को दुःख में भी सुख है, और अयशी और अकृती को सुख में भी दुःख ही है, देखो हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र और युधिष्ठिर आदिकों को कितने कितने दुःख पड़े हैं, पर कभी अपने धर्म से च्युत नहीं हुए, इसी कारण उनका नाम अभी तक चला आता है, और चला जायगा, नामी से नाम श्रेष्ठ होता है, नाम की महिमा को शेषनाग भी नहीं कह सकते हैं।

उपर कहे हुए प्रकार बात चीत करके कपोत कपोती दोनों दक्षिण दिशा को गये, एक वर्ष फिरते रहे, पर कार्य की सिद्धि न हुई, फिर लौट कर पश्चिम और पूर्व दिशाओं को गये, वहां पर भी उद्योग की सफलता न हुई, तत्पश्चात् उत्तराखंड को सिधारे, पहाड़ों पर खूब घूमे फिरे, जब पशुपतिनाथ शिव महाराज के मन्दिर के अन्दर गये, तो क्या देखते हैं कि एक राजकन्या

जो नख शिख तक लावण्यता से भरी है, अंग अंग में सुन्दरता वास कररही है, जिसके आंख नाक कान मुख अनुपमेय हैं, पद्मासन से बैठी हुई शिवाराधन में मग्न है, दोनों ने विचार किया कि यह कन्या नैपाल नरेश की है, यदि इसके अंग में कोई दोष न हो तो हमारे राजा की रानी होने योग्य है. इस लिये उसको स्नान करते समय देखना उचित है, ऐसा सोच करके वहां से चलकर राजकन्या के भवन में आन कर स्नानागार के एक झरोखे में चुप चाप बैठ गये, और दूसरे दिन प्रातः काल जब वह राजकन्या अपनी सखी सहेलियों के साथ स्नान करने को आई, कपोत ने कपोती से कहा हे प्यारी! मैं बाहर जाकर रमण करूंगा, कारण यह है कि जहां स्त्रियां स्नान करती हैं, वहां पर पुरुष का रहना अधर्म है, किसी स्त्री को स्नान करते हुए देखना पाप लगता है, और नग्न स्त्री को देखना आठ प्रकार के मैथुनों में से एक प्रकार का मैथुन है, ऐसे अधर्म का मैं भागी नहीं हुआ चाहता हूं, तू सोच समझ कर भली प्रकार सारा

शरीर राजकन्या का देख ले, क्योंकि जो कार्य हम लोगों ने स्वेच्छा ग्रहण किया है वह बहुत ही उत्कृष्ट और भारी है, यदि उसमें किसी प्रकार का दोष पीछे से प्रकट हुआ तो हम दोनों ईश्वर के सन्मुख बड़े पातकी समझे जावेंगे, कपोती ने कहा आप ठीक कहते हैं, आप बाहर रहिये, वह यह सुनकर बाहर चला गया, इतने में राजकन्या जिसका नाम चन्द्रकला था, अपनी सहेलियों के साथ स्नानागार में पहुँची, और हर्षित होकर सब के साथ स्नान करने लगी।

उसके हेमांगी शरीर को देख कर कपोती चकित हो गई, थोड़ी देर अवाच्य खड़ी रही, फिर सँभल कर अच्छी तरह जांच की, सारा देह निर्दोष पाया, अति-प्रसन्न हुई, मनुष्य की भाषा में बोली, हे राजकन्या! सुन, जब तक मुक्ताफल का ग्राहक न मिले तब तक वह निष्फल है, जब तक विद्या का सत्कार करनेवाला न मिले तब तक वह विद्या अविद्या है, जब तक गुण का गुणग्राही न मिले, तब तक वह गुण अवगुण है, इसी प्रकार जब तक रूपवती कन्या को यथा योग्य

श्र न मिले तब तक उसकी सुन्दरता निष्फल है।

हे राजकुँवरि! यदि यह तेरा स्वर्णलता शरीर किसी स्वर्णमय वृक्षरूपी पुरुष के शरीर से विधिवत् न लिपट जाय और उसके प्रेम के जल से न सिंचता रहे तो थोड़े काल में यह कुम्हलाकर पृथ्वी पर गिर पड़ैगा, और फल फूल से शून्य निन्दा का पात्र बनेगा।

हे सुलोचने! जैसे तू रूप रंग शील स्वभाव में अद्वितीय है वैसेही तेरा पति भी होना चाहिये।

कपोती की यह वाणी बाणवत् उसके अन्तःकरण में प्रवेश कर गई, और विचार करके अनुभव किया तो यथार्थ पाया।

. राजकन्या—हे कपोती! प्रारब्ध अमिट है, जिसके भाग्य में जो लिखा होता है, वह अवश्य होता है, उस का मिटानेवाला कोई नहीं, उसके हटाने में अवतारादिक भी असमर्थ हुए हैं, सुन जिस द्रौपदी के मित्र कृष्ण भगवान्, पिता द्रौपद महाराज, पति युधिष्ठिर आदि और ससुर भीष्मपितामह हों, उसकी उस सभा में ऐसी दुर्दशा हो, और उसके पांचो पुत्र सोते हुए

मारे जावें यह क्या आश्चर्य नहीं है, जिसके पिता जनक महाराज, ससुर दशरथ महाराज, देवर शूरवीर वीरों को अवीर करनेवाले, भूमंडल को धारण करनेहारे लक्ष्मण और पति ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्र हों उसका हरण जंगल में अधर्मी निर्लज्ज पाप कृत रावण करके. हो और कारागार में डाली जावे, यह प्रारब्ध नहीं तो और क्या है।

हे कपोती! जो मेरे ललाट में लिखा है, वह होगा, तुमको मेरे लिये क्यों ऐसा सोच है।

कपोती–हे प्यारी सुन्दरी! आपने प्रारब्ध और पुरुषार्थ का अर्थ यथोचित्त नहीं समझा है, यदि सब स्त्री पुरुष प्रारब्धही के भरोसे बैठे रहें, तो संसार का कुल कार्य बन्द होजाय, और एक प्रारब्ध के निवृत्ति होने पर, और दूसरी प्रारब्ध के न होने से, संसार नष्ट होजाय पर ऐसा तो होता नहीं है।

इसीसे मालूम होता है कि प्रारब्ध फल पुरुषार्थ का ही है, इसलिये पुरुषार्थ करना सबका मुख्य धर्म है, यदि पुरुषार्थ करने से कार्य की सिद्धि न होवे तब मान लेना

चाहिये कि यह होना मेरे प्रारब्ध में याही नहीं, इसलिये यदि आप चाहती हैं कि आपको वर श्रेष्ठ मिले तो आप पूर्वकाल की स्त्रियों करके किये हुए जप, तप, व्रत श्रेष्ठ पति पाने के निमित्त करें यह श्रद्धा रखते हुए कि मेरा कर्म मुझको अवश्य फलदायक होगा, आप यदि पूछें कि मैं क्यों आपको श्रेष्ठ पति पाने के लिये प्रेरणा करती हूं तो सुनिये, धर्मशास्त्रानुसार एक जीव दूसरे जीव का उपकार करे, उसके ऐसा करने में उसीका उपकार होताहै, इसलिये मेरी प्रेरणा आपको शुभ कर्म में लगाने से आपही का कल्याण नहीं बल्कि मेरा भी है, क्योंकि जो चैतन्य आत्मा साक्षीरूप से आपके अन्तःकरण में स्थित है, वही मेरेमें भी स्थित है।

राजकन्या–हे कपोती ! यदि तू मेरे ऊपर ऐसी दयालु है तो बता क्या उपाय श्रेष्ठ पति पाने के लिये मुझको कर्तव्य है।

कपोती–हे कमललोचनी ! सब देवताओं में बड़े दानी, बड़े दयालु, स्त्रियों के वांछित वर के शीघ्र पूर्ण करनेहारे श्रीशिवजी महाराज हैं, उनका पूजन आप

अवश्य करें, वह आपके इष्ट फल को देवेंगे, मेरे कहने पर विश्वास करें, मैं और मेरा पति जो धर्म से कभी हटनेवाला नहीं है, चाहे प्राण भी जाता रहे, यथाशक्ति आपके कार्य में विधिपूर्वक सहायता करेंगे, यह वचन मैं आपको देती हूं, यह मेरा वाक्य अमिट है, यह कहकर वह कपोती उड़ गई, और सारा वृत्तान्त अपने पति से बाहर आकर कहा, पति बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ, और दोनों ने वहां से यात्रा किया, अपने राजा के घर आये, थोड़े काल विश्राम किया, एक दिन राजा के पलंग पर राजा की कई एक छोटे छोटे चित्र जो उनके रूप की सच्ची प्रतिमा थी पड़ी हुई थीं, उनमें से एक को उठा कर देखा, और विचार किया कि लड़की अपने वर को पहिले देख ले, फिर उसकी प्राप्ति हेतु तप करै, यदि उसको न देख सके तो उसके प्रतिमा को देख ले, यदि प्रतिमा भी यथार्थ न मिलै तो उसके गुण दोष को सुन ले, बिना ऐसा किया हुआ पुरुषार्थ यथोचित फलदायक नहीं होता है, जैसे बिना स्वरूपक ज्ञान के परा भक्ति फलदायक नहीं होती है,

भक्ति का रस जभी मिलता है जब पुरुष भक्ति के विषय को पहिले देख और जान लेता है. जिस कन्याने अपने प्रियवर को नहीं देखा है, और उसके गुण स्वभाव को नहीं जाना है, उसके सच्चे प्रेम की धार उसके तरफ़ नहीं जाती है. और न वह प्रेम का मज़ा पाती है, पहिले फल को देख और जान ले फिर चखे तब उसके रसका मज़ा मिलता है, इस प्रकार कपोत कपोती बात चीत करके एक एक चित्र राजा का अपनी अपनी चोंच में लेकर उड़ गये, और नैपालनरेश की कन्या के सामने रखदिया यह कहते हुए कि यदि यह राजकुमार आप के प्रेम के पात्र होने के योग्य हों तो इसके निमित्त हे राजकन्ये! तुम तप शिवजी का करो तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा, वह विचित्र चित्रको देखकर चित्रसरीखी रह गई, क्योंकि चित्त अपने धर्म को त्याग करके चित्र में लग गया, थोड़ी देर जहां बैठी थी वहीं अवाच बैठी रह गई।

जब अन्तःकरण की समता विषे विषमता आई निश्चयात्मक बुद्धि ने प्रेरणा करके उसको दृढ़ किया कि

ज़्यादा शोच विचार का अब अवसर नहीं है त्रिपुरारि महाराज की आराधना इस पति पाने के लिये कर्तव्य है, यह शोच कर उठ खड़ी होगई, स्नान करके राजा चन्द्रकान्त के दोनों चित्रों को लेकर मन्दिर के अन्दर गई, और युगल कर में कमलपुष्पोंको लेकर उस कमल-नयनी ने शिवको अर्पण किया, और फिर अपने हृदयाकाश में उसी मूर्तिको रखकर और मानसिक गंगाजल से स्नान कराकर सविनय मनही मनमें बोली कि हे प्रभो! यदि मेरी भक्ति आप विषे सची है, तो आप कृपा करके इस उत्तम वरको मुझे दें, और इसीके पाने के लिये आजसे मैं आपकी पूजा करतीहूं, और प्रण करतीहूं कि चाहे मेरा शरीर रहै या छूटै जबतक मेरा मनोरथ सिद्ध न होगा तबतक जलपान न करूंगी, यह कहकर पद्मासन से बैठ गई, और घोर तप करने लगी, जिस को देखकर सब देवता घबड़ा गये, तपकी तपन ने शिवमहाराज को समाधि से जगादिया, और वह फिर कर अपनी अर्द्धांगी पार्वती से मुसकराकर कहनेलगे कि हे प्रिये! जैसे तुमने मेरे पाने के लिये कठिन तप

किया था वैसेही कोई कन्या मेरी परा भक्ति में लगी हुई अपने प्यारे पति के पाने के लिये अपूर्व तप को कररही है, जिससे मेरी समाधि जमती नहीं, और जबतक उनकी शुभ कामना पूर्ण न होजायगी, तब तक मेरी समाधि नहीं जमेगी, यह सुनकर पार्वतीजी हँसपड़ीं, और कहनेलगीं कि हे प्राणनाथ! आप त्रिभुवन के मालिक होकर एक कन्या के तपोबलसे घबड़ा गये, बड़े आश्चर्य की बात है।

तिसपर शिवजी ने कहा हे प्यारी! स्त्रियां बड़ी प्रबल होती हैं, वे क्या नहीं कर दिखाती हैं, मैं भक्तवत्सल हूं, मैं भक्तों का दुःख नहीं देख सकताहूं, उठो मेरे साथ चलो, राजकन्या के मनोगत कामना को पूर्ण करें, दोनों उठ खड़े हुए, पिण्डी फटी, दोनों बाहर दृष्टिगोचर हुए, जैसे एकवार शिवजी महाराज पहिले शिला पिण्डी में से मार्कण्डेयऋषि को मृत्यु से बचाने के लिये निकल आये थे, और राजकन्या के सन्मुख खड़े होगये, यह कहते हुए कि हे पुत्रि! तेरा तप सफल होगा, अब तू परिश्रम को त्याग अपने भवन में जाकर रह, इस

अमृतवाणी को सुनकर कन्या अतिप्रसन्न हो प्रणाम करके गद्गद वाणी से स्तुति करने लगी, जिसको सुन कर शिव पार्वती दोनों ने आशीर्वाद दिया, शिव ने कहा कि हे पुत्रि ! तेरा पति राजा चन्द्रकान्त एकपत्नी-व्रतका धारण करनेवाला होगा, और पार्वती ने कहा हे पुत्रिके ! तू अपने पतिको सदा प्यारी रहैगी, तेरे द्वादश पुत्र आदित्यवत् पैदा होंगे, और उनका सुख भलीप्रकार देखेगी, हे कन्ये ! यदि महादेव जगत्पिता हैं, तो मैं जगत् माताहूं।

जो भक्त केवल मेरी उपासना करके या केवल शिव की उपासना करके इस अपार भवसागर को पार करना चाहता है वह अविज्ञ है, उसका तप निष्फल है, किस पुत्र या पुत्री का कल्याण पिताकी सेवा से और माता के निरादर करने से हो सकता है, जो चैतन्य आत्माको पूजता है, पर माया का निरादर करता है, वह कभी नहीं अपने वांछित फलको प्राप्त होता है, तूने हम दोनों की आराधना की है, इसलिये तेरी कामना पूर्ण होगी, यह कहकर दोनों फिर अन्तर्धान

होगये, और पिण्डी ज्योंकी त्यों मरगई, यह सब हाल कपोत, और कपोती ने देखा, और जाकर अपने राजा चन्द्रकान्त से कहा, उसने भी यही सारा वृत्तान्त स्वप्न में उसी रात्रि को देखा था, बड़ा प्रसन्न हुआ, प्रातःकाल अपने माता पिता और भाई हरिदास के पास जाकर सब हाल सुनाया, हरिदास ने एक पत्र जिसमें कुल समाचार लिख दिया था नैपालनरेश की सेवा में एक दूत द्वारा भेजा, राजा ने जब पाती खोलकर पढ़ा तो अपने स्वप्नका सारा व्यवहार राजा चन्द्रकान्त के स्वप्नगत व्यवहार से मिलता पाकर समझा कि यह सम्बन्ध ईश्वर की प्रेरणा करके होनेवाला है, ज्यादा पूंछ पांछ की ज़रूरत नहीं, हरिदासजी के पत्रका उत्तर भेजदिया, और यह लिखा कि सबका प्रेरक परमात्मा है, जैसी उसकी इच्छा होती है वैसाही होता है, विधि के लेखका मिटानेहारा कौन है, जैसी आपकी इच्छा है मैं करने को तैयार हूं, जब दूत वापस आया और नैपालनरेश का पत्र हरिदासजी के हस्तकमल में रखदिया उसको पढ़कर वह अत्यन्त हर्ष को प्राप्त

हुआ, और सम्बन्धनामावली से यह मालूम हुआ कि नैपालनरेशकी पहिली कन्या पुष्पवती देवी का विवाह राजा दसकुँवर के पुत्र दिग्विजय महाराज के साथ हुआ है, जिनकी प्रिय भगिनी लज्जावती देवी पुंडरीक महाराज की वामाङ्गी है, जिसके पुरुषार्थ करके सारे संसार का अन्धकार विद्या के प्रकाश से दूर होगया है तो उस काल में जो आनन्द उनको और उनके माता पिता को प्राप्त हुआ उसके प्रकट करने में वाणी असमर्थ है, हे पाठकजनो! देखो निष्काम शुभ कर्म करनेवालों को कैसा अविनाशी यश मिलता है। और उसका हाल सुन कर दूसरों को कैसी प्रसन्नता होती है, क्योंकि ऐसा कर्म करनेवाले का अन्तःकरण शुद्ध उज्ज्वल होजाताहै, और उसके अन्दर जो चैतन्य आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह झलकने लगता है, और उस झलक से उसका हृदयकमल प्रफुल्लित होजाता है जो आनन्दका कारण बनताहै, और सुननेवाले का भी हृदयकमल जो सुनने के पहिले बंद रहता है सुनने पर खिल उठता है, और इस कारण उसको

भी चैतन्य आत्मा के सम्बन्ध होने से आनन्द मिलने लगता है।

हरिदासजी और उनके माता पिता ने राजमंत्री को बुलाकर और राजा चन्द्रकान्त के विवाहका समाचार सुना करके आज्ञा दिया कि यथोचित सामान शादी का किया जाय, उसके अनुसार सब कार्य होने लगा, थोड़े दिनों में प्रजा को भी विवाह के उत्सवका हाल मालूम होगया, सबोंने ऐसे शुभ कार्य की सामग्रियों के एकत्र करने में बड़ी अभिलाषा प्रकट की, पवित्र नदियोंसे जल मँगाया गया, जंगलों से मलयगिरि चन्दन ले आये, और देशदेशान्तर के बड़े बड़े विद्वान्, आचार्य और पण्डित बुलाये गये, दूर दूर से ब्रह्मर्षि और राजऋषि आये, राज्यकुल के लोग और सम्बन्धी जन सेनासमूह लिये हुए पहुँच गये, विवाहमंडप अति सुहावना रचा गया, और उसमें मनुष्य, पशु और पक्षीकुल मायावी रचना ऐसी कीगई कि उसको देखकर बुद्धि चकराती थी, षट् मास पहिले से उस मंडप में विवाहसम्बन्धी कर्म विधिपूर्वक होते रहे, और वेदमंत्रों का उच्चारण

बताता था कि इस राज में सतयुग का डंका चारों तरफ़ बज रहा है।

कार्त्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन नैपाल देशकी ओर बरात ने प्रस्थान किया, हे पाठकजनो! मेरे साथ साथ नैपाल देशको चलकर वहां के सामान शादी पर दृष्टि डालिये, और जीवन का स्वाद उठाइये, जैसे दक्षिणदिशामें समुद्र का दृश्य अकथनीय आनन्द का देनेवाला है, और परमात्मा के महत्त्व का बतानेवालाहै, वैसेही उत्तराखंड के तरफ़ भूधरों का भूपाल हिमालय पर्वत कहीं भूतसा, और कहीं पर भूदेवसा आकाश-मंडल को छूता हुआ सहस्रों कोसों तक अनेक प्रकार के घास फूस फल फूल और हरे भरे वृक्षों के भूषणों से भूषित हो रहा है, इस देश की शोभा को कौन वर्णन कर सकता है, यही कैलास है, इसी पर शिव महाराज बसते हैं, इसीपर विष्णु महाराज रमण करते हैं, इसी पर यक्ष, गन्धर्व, किन्नरादि प्रभुके ध्यानमें मग्न होकर कीर्तन करते हैं, यही देश है जिसमें सोने चांदी और हीरे पन्ने आदि अमूल्य मणियों के कोष भरे पड़े हैं,

यह अनुपमेय भूमि है, क्योंकि शम्भु महाराज की जटा से श्रीमहारानी जगतहितकारिणी जाह्नवी देवी निकल कर अपने पति सागर से जा मिली हैं, और असंख्य अधिकारी स्त्री पुरुषों को तार दिया, और तारती जाती हैं, और अनधिकारी जीवों की जीविका को देती हैं, इस देश के राज्य विभूति को कौन कह सकता है, राजद्वार स्वर्गद्वार हो रहा है, अप्सरायें नृत्य कर रही हैं, राजघराने के लोग इन्द्रवत् सभा मध्य बैठे हैं, और शृंगाररसका रस ले रहे हैं, उनकी दृष्टि किंचित्मात्र हटती नहीं, इस नाट्यशाला के सामने एक मील तक दोनों तरफ़ सजे सजाये हाथी खड़े हैं, जिनके ऊपर सुनहली अम्बारियां खिंची हैं, और उनके ऊपर सूर्य की प्रभा को भी लज्जित करनेहारे पुरुष मणि आदिकों से लदे हुए अपने हेमांग शरीर के अहंकार में डूबे हुए बैठे हैं, ऐसा दृश्य राजभवन के हर एक द्वार पर दृष्टिगोचर हो रहा है, कहीं कहीं तुरंगों की पंक्ति कुंजरों के बदले में लगा दीगई है, और उन पर जो सवार हैं वे भी अपने रंग में रँगे हुए निराले चन्द्रप्रभा को लजा रहे हैं।

उन हाथियों और घोड़ों के मध्य में भांति भांति के शीशेदार अलमारियों के अन्दर अनेक प्रकार के फ़्लादिक सजे हुए रक्खे हैं, चन्नमण्डप का हाल क्या लिखूं, इसके लेख में लेखनी अशक्त हो गई है, मन चकरा गया है, बुद्धि विचारशून्य होगई है, मणियों के खम्भे, मणियों के पाये, मणियों की धन्निशां, मणियों के कोष्ठ, और मणियोंकेही बेल बूटे लगे हुए गगन-मण्डप जो कृष्णपक्ष के रात्रि विषे दिखाई देता है, उसको लज्जित करते हैं, ऐसी विभूति वहां क्यों न हो, जहां शिव महाराज संपत्ति के पति, और विष्णु महाराज लक्ष्मी के पति निवास करते हों, इस दृश्य की दशा ने दूनी उन्नति कर दिखाई। जब काश्मीर देश से दिग्विजय महाराज अपनी भगिनी लज्जावति और मोहनी और उनके पति पुंडरीक महाराज सहित राज और कपिलंडली के आन पहुँचे,हे गिरि! तेरी महिमा अतुल्य है, देखने में तू जड़ है, पर वास्तव में तू चैतन्य है, तूही जल जो जीवन का आधार है, नीचे के देशों को देता है, तूही अपनी कृपा करके अनेक नदियां गंगा यमुना

गोमती सर्यू ब्रह्मपुत्र आदिक अपने में से निकाल करके नीचे को बहाता है, और उन करके सब जीव-मात्र सुख उठाते हैं, तूही अपने मस्तक और उदर से अमूल्य रत्नों को देकर पुरुषों के पुरुषार्थ को सिद्ध करता है, तेरीही चोटीपर बैठकरके कोटिन महान् पुरुष तपस्या द्वारा वैकुंठ को चले जाते हैं, यह तेराही अनुग्रह है कि स्त्री पुरुष, पुत्र पुत्री तेरे ऊपर वैसेही प्रिय लगते हैं जैसे सरोवर में कमल और कुमुदिनी खिले हुए सुन्दर लगते हैं, तेरे रमणीक स्थान को देख करके सूर्य चन्द्र थोड़ी देर के लिये अपने रथों को रोक करके विश्राम करते हैं, तेरेमेंसे अनेक हेमांगी कन्या उत्पन्न होकर नीचे के देश के राजाओं के हृदयकमल को आनन्द के जल से सिंचन करती हैं, तूही ने अपने में मुक्ति का सदन (बद्रीनाथ) बना रक्खा है, तूही शान्ति का द्वार है, आज मैं तेरी महिमा को देखता हूं, तेरे वक्षःस्थल पर लाखों स्त्री पुरुष पुत्र पुत्री अनेक पहाड़ी देशों से आन कर गुलेलाला (पोस्तके लाल श्वेत फूल) खिला दिया है, तूही स्वर्ग है, तूही वैकुंठ है, तूही मोक्ष का दाता

है, धन्य हैं वे जिनका विवाह चन्द्रमुखी कन्याओं से तेरे ऊपर होता है, चन्द्रकान्त के प्रारब्ध की सराहना कौन कर सकता है, जिसको आज की चन्द्रनिशा विषे चन्द्रकला राजकन्या प्राप्त होगी।

सूर्य भगवान् अस्त होगये, तारे गण निकल आये, चन्द्रमा ने खेत किया, उसकी प्रभाने चारोंओर शुभ्रता और सुन्दरता को फैला दिया, बाजे बज उठे, जिससे मालूम हुआ कि द्वारपूजन का समय निकट आगया, सब राजा लोग अपनी अपनी टोली सजाकर चल पड़े, वधूवर के तरफ़ के लोग भी निकल पड़े, यह बरात ऐसी भली मालूम होती थी कि मानो इस रात्रि में सोलहों कलायुक्त चन्द्रमा के मिलनेके लिये समुद्र ऊपर उठा चला जा रहा है, वैसेही समुद्र की सूरत में लहराते हुए राजकन्या के तरफ़वाले भी चन्द्रकान्त चन्द्रमा के देखने के लिये आगे को बढ़े चले आरहे हैं, थोड़ी दूर पर दोनों समुद्रों का मिलाप हो गया, वधूवर के लोग समुद्र की सूरत में उछल कर ऐसे ज़ोर के साथ मिले कि वधू के तरफ़ का समुद्र पीछे हट करके वधूवर

के समुद्र को आगे बढ़ने की इच्छा प्रकट की, जब दोनों तरफ़ के लोग समुद्रवत् परस्पर मिले तो उस समय का आनन्द अकथनीय था, विधिपूर्वक द्वार-पूजन हुआ, ऐसा दान दक्षिणा दिया गया कि जिसको देखकर राजा कर्ण स्वर्ग में और राजा बलि पाताल में लज्जित होकर व्याकुल होगये।

हे पाठकजनो! शुभ कर्म भी दुःखदायी होता है, स्वर्ग में भी तारतम्यता होती है, वहां भी राग द्वेष बनाही रहता है, नीचे वाले ऊपर वाले को देखकर राग द्वेष की अग्नि में जलने लगते हैं, जब स्वर्ग का यह हाल है, तो नरक का हाल क्या होगा आप अनुभवकर सकते हैं, श्रेष्ठ उपाय वही है जिस करके मन का संकल्प विकल्प नष्ट होजाय, और शान्ति प्राप्त होवै, यह केवल ज्ञान करके ही हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है, देखो जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में मन के संकल्प विकल्प करके जीव अशान्त रहता है, पर सुषुप्ति अवस्था में मन के लय होजाने से जीव कैसा आनन्दित रहता है, उस हालत में न राजा का, न प्रजा का, न

देवता का, न पशु पक्षी का भय जीव को है, अपने स्वरूप में वह आनन्द है, यदि उसका वह आनन्द ज्ञानसहित हो तो क्या कहना है, पर यह आनन्द अतिदुर्लभ है, इसलिये इसको यहीं छोड़कर आपभी सबके साथ अपने डेरे पर आइये जब एक पहर रात रह गई तब वैदिक रीति से चन्द्रकला का पाणिग्रहण हुआ, चन्द्र सूर्य को साक्षी देते हुए कि जबतक आप की स्थिति है तबतक हम दोनों जिस धर्म के बंधन से अपने को बांधते हैं कभी नहीं तोड़ेंगे चाहे यह शरीर टुकड़े टुकड़े होजाय, देवता इस दृढ़ प्रतिज्ञा को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, आकाशवाणी हुई कि तुम दोनों स्त्री पुरुष के धर्म में अद्वितीय हो और रहोगे।

एक पक्षतक बरात नैपाल में नैपालनरेश के यहां रहकर सेवा सत्कार भली भांति पाई, बिदाई की इच्छा प्रकट की, प्रसन्नता गई उदासी आई, जैसे संयोग आनन्द का कारण है, वैसेही वियोग दुःख का कारण है सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख घटीयंत्र की तरह फिरा करता है, एक रात्रि को जब चन्द्रप्रभा खिल

रही थी, नेपालनरेश उनकी दोनों कन्यायें पुष्पवती और चन्द्रकला, दोनों जामात्र दिग्विजय और चन्द्रकान्त, पुंडरीक महाराज और उनकी दोनों पत्नी श्री महारानी मोहनी व लज्जावती के पास बैठेथे, और वहीं उशष्टि और गर्गऋषि भी विराजमान थे, औरपरस्पर बातचीत कर रहे थे कि इतने में एक दुबला पतला यति गेरुवा वस्त्र धारण किये हुए आन खड़ा होगया और कहने लगा हे राजन् ! हे महाशयो ! मैं भूख की पीड़ा से पीड़ित हूं, इसका निवारण चाहता हूं, यदि आप की इच्छा हो तो इस मेरे कमण्डलु को भरदे, राजा की आज्ञा पाकर राजमंत्री ने नौकरों से साभिमान कहा कि जिस वस्तुकी इच्छा यति करे उससे उसकी तोंबी भर दो, यह सुनकर नौकर लोग अन्न लाकर उसको भरने लगे, पर वह न भरी, जो वस्तु उसमें डालते थे उसका कहीं पता नहीं लगता था, कोठार का कोठार खाली हो गया, पर तोंबी ज्योंकी त्यों खाली रही, नैपालनरेश को आश्चर्य हुआ, स्वतः खड़े होकर हजारों प्रकार के भोग्य वस्तु अपने हाथ से डाले, पर किसी का

पता न लगा लज्जित होकर बैठ गये, तब यति ने उस दिन गर्ग और पुंडरीक ऋषियों से कहा कि आपलोग अपनी योगमाया, और तपबल करके मेरी तोंबी को भरदें, मैं क्षुधासे व्याकुल हूं, उन लोगोंने अनुभव किया तो अपने को कुल दैवीशक्तियों से शून्य पाया, कहां वे सबकी सब चली गईं पता न लगा, लाचार होकर जहां बैठे थे वहीं बैठे रहगये तब यति ने कहा हे राजन्! तेरा राजविभव क्या होगया, कहां गया तू बड़ा अभिमानी दानी था, अब क्यों दान नहीं देता है।

इसी प्रकार ऋषियों से कहा हे महानुभाव पुरुषो! आप लोगोंने ऋद्धि सिद्धि के बल करके असंख्य जीवों की तृप्ति अनेकबार करी है, मेरे साथ आप क्यों इतनी निर्दयता करते हो, योग और तपमें बड़ी शक्ति होती है, वह सब कुछ करनेको समर्थ है, सबोंने शिर झुका लिया और अवाच आश्चर्ययुक्त बैठे रहे, जब यतिने देखा कि ये सब शक्तिहीन हैं उनसे कहा कि अब आप लोग इस मेरी तोंबी की शक्ति को देखिये, यह कहकर तोंबी की ओर दृष्टि डाली यह कहते हुए कि हे तोंबी! तू मेरी

अप्रकट इच्छा को प्रकट करके सबकी इन्द्रियों के विषय का कारण बन, ऐसा कहकर वह यति अन्तर्धान होगया, और तोंबी में से अनेक प्रकार के खाने पीने की चीज़ें बाहर निकल कर अस्वार के अस्वार लग गये, जिसको देख करके सब के सब विस्मय युक्त होगये, फिर उसी तोंबी में से आवाज़ आई कि हे ऋषियो ! मैं यति की सूरत में व्यापक ब्रह्म था, मैं ही इच्छामात्र से असंख्य ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके चला रहा हूं, और वे मेरी इच्छामात्र से मेरे मेंही लयभाव को प्राप्त होजाते हैं, जो कुल सृष्टि है मेरी इच्छामात्र है, ऋषियों को जो अभिमान अपने तपबल पर होताहै वह वृथा होता है, न उनमें कोई शक्ति है, न उनके तप में कोई बल है, जब मैं प्रसन्न होता हूं तब मेरी प्रसन्नता से उनके तप में बल आजाता है, उनके सामने ऋद्धि सिद्धि हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, वे यही जानते हैं कि हमारे तप करने से ये प्राप्त हुई हैं, ऐसाही राजा लोग भी समझते हैं कि हमारेही पुरुषार्थ करके यह सब राजविभव प्राप्त है, ऐसा उनका ख्याल करनाभी मूर्खता

है, तुम सब विद्याभिमान राज्याभिमान और तपोभिमान को त्याग करके मेरे सच्चे प्रेमी भक्त हरिदास से जो चन्द्रकान्त का भ्राता है मिलो, और उसकी सरलता, निर्हंकारता और दयालुता को देखो, तुम्हारा कल्याण होगा।

इतना कहने के पीछे तोंबी दृष्टि से अदृष्ट होगई, और जो कुछ भोगार्थ सामग्री उसमें से निकली थी उसका कहीं पता न लगा, सबों ने नम्रतापूर्वक प्रणाम किया, और आपुसमें कहने लगे कि हरिदास महाराज के दर्शनार्थ शीघ्र चलना चाहिये।

नैपालनरेशने बड़े धूम धाम के साथ अपनी कन्या चन्द्रकला को बिदा किया, और स्वयं भी अपने संबंधियों सहित चले, उन सब के हृदयकमल का मुख रवि स्वरूप हरिदासजी की ओर झुकपड़ा, क्योंकि रविको कमल अनेक हैं पर कमलों को रवि एक है और उस समय जो आनन्द उनको होरहा था उस का मज़ा या वे पाते थे, या ग्रन्थकर्ता पाता है, या कुछ कुछ पाठकजनको भी मिलता है, चन्द्रकला के शृंगार

के हाल लिखने में मेरी लेखनी चुप चाप खड़ी है, आगे बढ़ने की सामर्थ्य नहीं रखती है, और न कोई वस्तु पृथ्वी और आकाश विषे प्रतीत होती है जिससे मैं उसकी उपमा देकर उसको मानसिक दृष्टि का विषय बनाऊं इतनाही कहना बस है कि वह साक्षात् लक्ष्मी की प्रतिमा है, और आभूषणों से आभूषित होती हुई अपने प्राणनाथ चन्द्रकान्त के साथ जिसमें श्रीनाथकी प्रतिमा का झलक झलक रहा है चली आती है, दोनों श्यामकर्णी घोड़ों पर सवार हैं, उनकी कमरके एकतरफ़ चन्द्रहास विद्युत् की तरह चमक रही है, दूसरे तरफ़ चाप द्वितीय चन्द्रमा की आकार में प्रकाश कर रहा है, आपुसमें हँसते हँसाते बात चीत करतेहुए सबके आगे आगे चले जा रहे हैं ऐसेही कई दिन व्यतीत होगये, एक दिन राजा रानी बहुत दूर सबसे निकल गये, एका-एक एक दीन दुःखी वृद्ध ब्राह्मण उनके सामने आन खड़ा हुआ, उसके नेत्रों में गर्म गर्म अश्रुधारा चलरही थी, मुख सूखा जाता था, पेट में हाफा पड़ा था, दुःखने उसको निर्भय कर दिया था, ठंढी श्वास लेकर बोला

बता क्या तू ही राजा चन्द्रकान्त है, यदि तू ही चन्द्रकान्त है जैसा मैं समझता हूं तो तुझको और तेरे राज्य को धिक्कार है, हाय मुझ गरीब ब्राह्मण का यह हाल तेरे जीते जी हो, क्या तेरी दशा शरीर त्यागान्तर पर होगी।

राजा चन्द्रकान्त का शरीर कम्पायमान होगया, वह बड़ी नम्रता से बोला, हे ब्राह्मण! तू अपने दुःखको कह, मैं अवश्य उसको दूर करूंगा, तू निश्चिन्त हो, ब्राह्मण बोला दो दिन व्यतीत हुए कि कई हजार तुर्क अरब देश के रहनेवालों ने मेरे घर को घेर लिया, और मेरी कन्या सूर्यमुखी को जिसकी आयु षोडश वर्ष की है पकड़ लिया, और एक पालकी के अन्दर डाल दिया, और उसको चारों तरफ़ रस्सी से बांध दिया, और लेकर चल दिये मेरी तरफ़ यह कहते हुए कि इस कन्या को हम लोग सुलतानरूम के हाथ वेच कर बहुत सा द्रव्य पैदा करेंगे।

उस कन्या का रुदन करना उस बेवशी की हालत में मेरे हृदय को विदारनेलगा, उन दुष्टों से मैंने विनती

की, पैर पर गिरा, पर सुनता कौन है, जब बोला तब मार खाया, बेदम होगया, धरणी पर गिरपड़ा, वे दुष्ट उस मेरी कन्या को लेकर चले गये, इस समय वे दश बीस कोस पर होंगे, मेरा हृदय शोक की अग्नि से जल रहा है, यह विपत्ति प्रजा पर तब पड़ती है, जब राजा विषयी और अधर्मी होता है, चन्द्रकला उस दुःखी ब्राह्मण के दुःख को न सह सकी।

उसके नेत्र डबडबा आये, अपने पति के तरफ़ देख-कर कहने लगी, महाराज, शीघ्र इस शोकातुर ब्राह्मण को अशोक कीजिये, इसका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता है, देरी न करिये, घोड़े को एड़ दीजिये, धनुष बाण हाथ में लीजिये, लड़की को छुड़ाइये, पिता के सिपुर्द करिये, जब तक वह कन्या पिता को न मिलेगी, मैं जल पान न करूंगी, चन्द्रकान्त ने कहा हे प्रिये! तुम ठीक कहती हो, तुमको ऐसा ही कहना उचित है, मैं भी जल पान न करूंगा, जब तक राजशत्रु पराजय न हो जायँगे, और हरी हुई कन्या को पिता न पाय लेगा।

ब्राह्मण से कहा, महाराज, आप असोच रहैं, आप

की कन्या कल सायंकाल तक आजायगी, आप यहां पर ठहरे रहें, और अपना सब हाल सुनाकर बरात को ठहरा रक्खें जब तक मैं वापिस न आजाऊं, ब्राह्मण ठहर गया।

राजा रानी ने घोड़े को एड़ दिया, वे हवा होगये, चार घण्टे के अन्दर ही अन्दर शत्रुओं की सेना के समीप पहुँच गये, लगाम को कमर से बांधा, घोड़ों की ग्रीवा को हाथ से थप थपा कर उनके कानों में कहा कि हे प्यारे मित्रो! यह धर्मक्षेत्र है, धर्म से न हटना, तुम्हारे भरोसे यह काम हमलोगों ने ठाना है, तुम दोनों हम दोनों के मित्र हो, यदि यहां हमलोग जूझें तो हम दोनों की लाशों को अपनी अपनी पीठ पर रख कर उड़ जाना, और माता पिता और भाई हरिदासजी के सामने रखदेना ताकि उनको मालूम होजाय कि हमलोगों ने क्षत्रिय धर्म में प्राण को त्याग किया है, और हंसरूपी वंश में कलंक का टीका नहीं लगाया है, घोड़े समुझ गये, कानों को खड़ा किया, उनके शरीर में उष्णता आगई, रानी राजा समझ गये कि घोड़े युद्ध

चाह रहे हैं, शीघ्र गांडीव धनुष को हाथ में लिया, बाण को संधान किया। शत्रुओं पर वज्र की तरह टूट पड़े, घोड़ों ने अपने टापों से हज़ारों को गर्द मर्द कर दिया, तीव्र बाण शत्रुओं की गर्दन से शिरों को ऐसी सफ़ाई के साथ उतार ले जातेथे जैसे क्षौरिक बाल को अस्तुरों से काट गिराता है, जो बचे खुचे शत्रु घोड़ों के पास आगये, राजा रानी के चन्द्रहास ने विद्युत् की तरह चमक चमक करके काट गिराया, सबके सब मारे गये, पालकी खोली गई, लड़की बँधी अचेत पड़ी पाई गई, बन्धन काटा गया, पानी का छींटा दिया गया, वह बेहोशी से होश में आई, पिता पिता कहकर चिल्लाई, राजा ने कहा, हे सुलोचने ! मैं तेरा पिता हूं, और तेरे सामने यह तेरी माता है, उसने कहा मेरा पिता वृद्ध ब्राह्मण है, तुम राजा प्रतीत होते हो, और यह रानी, राजा रानी मेरा पिता माता कैसे होसकते हैं, राजा रानी ने उसको बोध दिलाया यह कह करके कि हमलोग धर्मपिता और धर्ममाता हैं, और पश्चात् सारा वृत्तान्त सुनाया, वह अति प्रसन्न हुई, रानी ने उसको घोड़े पर

अपनी गोद में बैठा लिया, और दोनों राजा रानी बात चीत करते हुए चले, और जब थोड़ी दूर वह जगह रह गई जहां ब्राह्मण और बरात ठहरी थी राजा ने विजय का शंख बजाया, सब को आनन्द हुआ, रानीने लड़की को उतार कर ब्राह्मण की गोद में डाल दिया, उसने उसको अपनी छाती से लगा लिया, दोनों के नेत्रों से अश्रुधारा का प्रवाह चला, जब अश्रुस्रोत बंद हुआ, तब ब्राह्मण की कन्या श्रीमहारानी मोहनी, लज्जावती, और पुष्पवती के चरणों को स्पर्श कर बड़ी नम्रता से बोली कि आप देवियों की शुभ इच्छा, राजा चन्द्रकान्त और महारानी चन्द्रकला के बाहुबल ने मेरी लाज, जिसको मैं प्राण से भी अधिक प्रिय समझती हूं, रख लिया, मुझको दुष्ट निन्दित तुर्कों के हाथ से बचा लिया, और मेरे वृद्ध पिता के प्राण की रक्षा किया, धन्य क्षत्रिय-वंश है जिसमें ऐसे ऐसे शूरवीर स्त्री पुरुष उत्पन्न होते हैं, जो अपने शरीर और राजभोग सामग्री को परो-पकार के लिये तृणवत् त्यागने को उद्यत होजाते हैं, और जिनका यश संसार में सूर्यवत् प्रकाशता रहता

है, यदि मैं क्षत्रियकुल में पैदा हुई होती, और जो अवसर (मौक़ा) रानी चन्द्रकला को मेरे छुड़ाने को मिला वह कहीं मुझको मिलता तो मैं भी स्वर्गीय सुख को प्राप्त होती, और अपनी सुकीर्ति को संसार में छोड़ जाती, रानी चन्द्रकला मुझको अपनी लड़की कहकर लाई हैं, इसलिये मैं आपलोगोंको अपना माता पिता समझतीहूं, और अपने पुत्रीवत् धर्म से कभी न हटूंगी, आपलोगों की सेवा करना मेरा परम धर्म होगा. इस कन्या की नम्रता, कोमलता, विद्वत्ता और सुन्दरता को देख करके सब अति प्रसन्न भई, और लज्जावती महारानी ने उसको गोद में लेकर बहुत प्यार किया।

जब नैपालनरेश दिग्विजय महाराज और पुंडरीक आदिक ऋषियों ने सारा वृत्तान्त सुना, राजा चन्द्रकान्त की बड़ी प्रशंसा की, कुल क्षत्रियों ने बड़ा उत्सव करके राजा रानी की बाहु पूजी, और कहा कि जो गुण अर्जुन में थे वह सब हे चन्द्रकान्त! तुम्हारे बिषे दिखाई देते हैं, और जो दयालुता और क्षमता द्रौपदी में थी वे सब रानी चन्द्रकला में दिखाई पड़ती हैं, हम लोग

आशीर्वाद देते हैं कि तुम दोनों सूर्य चन्द्रकी तरह जीवों के उपकारक बनते रहो, वह रात्रि आनन्द की रात्रिथी दूसरे दिन अरुणोदय होतेही बरात चली, काशी के निकट पहुँची, मंदिरों के सुनहले कलशे दिखाई देने लगे जो सूचित करते थे कि यह देवनगरी है, और समस्त संसार की सम्पत्ति यहीं चली आई है।

पार्वती महरानी यहां गंगारूप से विराजमान हैं, और विश्वनाथ महराज को अपनी शीतलता से शीतल कर रही हैं, और यही कारण है कि शिव महाराज भक्तों को वर देने में अहर्निश प्रसन्न और उदार चित्त रहते हैं, और मुख मांगा दान देते हैं, बरात के पहुँचने पर पुंडरीक व दिग्विजय महाराज, मोहनी, लज्जावती व पुष्पवती महारानी और राजा चन्द्रकान्त व रानी चन्द्रकला गंगाघाट पर स्नान के वास्ते गये और हाथ जोड़ करके प्रार्थना किया कि हे माता ! हमलोगों के वांछित मनोरथोंको सिद्ध करो, तुम्हारी शरण को प्राप्त हैं, यह कह कर सबों ने स्नान किया, मुख मांगा दान दिया, सब याचक सन्तुष्ट होगये, काम से निष्काम भये,

वधू व वधूवर दोनों एक आसन पर आसीन होकर विश्वनाथ मंदिर की ओर मुख करके विश्वनाथ महाराज और पार्वती महारानी का ध्यान करने लगे, उस कालकी उनकी अद्वितीय शोभा को देखकर लोग चकित हो गये, क्योंकि उनको यह मालूम होता था कि आज शिव महाराज और पार्वती महारानी शिला-मंदिर को छोड़ कर इन दोनों के शरीररूपी अलौकिक मंदिर में बैठकर सब भक्तों को दर्शन दे रहे हैं, ऐसा उनका अनुभव ठीक था, क्योंकि जब राजा रानी सम्पूर्ण विषय वासना को त्याग करके शिवपार्वती के ध्यान में मग्न हुए, उसी क्षण शंकर स्वामी चन्द्रकान्त राजा की देह में, और पार्वती महारानी चन्द्रकला के शरीर में प्रवेश करके स्थित होते भये, उनका अंग देवाङ्ग भासने लगा, चारों तरफ भक्तों की मंडली एकत्र होकर दूर से कीर्तन करने लगी, बाहर वालों को हीं ऐसा नहीं प्रतीत होता था बल्कि पुंडरीक आदिक सम्बन्धियों को भी ऐसा ही दिखाई देता था॥

ध्यानकाल में चन्द्रकान्त का शरीर कुन्द इन्दु सम

शिवके ऐसा, और चन्द्रकला का शरीर कपूरवत् पार्वती के ऐसा दिखाई देने लगा, ध्यान का वास्तव रूप यही है, जब तक ध्याता का रूप ध्येयाकार न होजाय तब तक भक्ति की पूर्णता नहीं, जो लोग मन्दिर को जाते थे वहां बिलकुल उदासी पाते थे, और आश्चर्य करते थे कि इस का क्या कारण है ॥

जब राजा रानी ने ध्यान से उत्थान किया, अपने को अति हर्षित पाया, पुष्प कमल को युगल हस्त में लेकर विश्वनाथ के मन्दिर को चले, वहां लोगों को फिर वही चमत्कारी दिखाई पड़ी जो पहिले थी, अन्दर प्रवेश करके पुष्प चढ़ाया, और शिव का दर्शन किया, उस समय वह मन्दिर कैलास हो रहा था, माया का परिवर्तन पल पल में हुआ करता है, कभी कुछ कभी कुछ, जहां थोड़ी देर पहिले उदासी छाई थी वहीं अब प्रसन्नता दिखाई देती है, थोड़ी देर पीछे सब कोई अपने अपने डेरे पर वापिस आये, अन्नपूर्णा देवी का प्रसाद पाय तृप्त होकर शिव महाराज के अशोक अचिन्त्य अखण्ड, राज्य में प्रवेश करके विश्राम किया, प्रातःकाल

बल बुद्धि विद्या के दाता सूर्य भगवान् के उदय होते ही बरात आगे को चली, और पांच दिवस के पश्चात् प्रेमाश्रमवन के निकट पहुँची, दूतों ने हरिदासजी और उनके माता पिता को बरात के वापस आने की खबर दी, और जब हरिदासजी को मालूम हुआ कि दिग्विजय व पुंडरीक महाराज बाल बच्चों सहित और गर्ग व उशस्ति ऋषि भी आते हैं तो उनका हृदयाकाश आनन्द से भर गया, शरीर गद्गद होगया, उनके दर्शन की लालसा हरदम उठा करती थी पुंडरीक और दिग्विजय महाराज के सतोगुण वृत्ति को जिसको सुन रक्खा था स्मरण करके मनहीमन में हर्षित होते थे, जो आनन्द मित्र के स्मरण में मिलता है वह उसके दर्शन पीछे नहीं मिलता है, गंगा के प्रवाहवत् काल का भी लहर एक दूसरे के बाद आता जाता है, वह घड़ी भी आ पहुँची जब चन्द्रकान्त, चन्द्रकला आदिक आगये, और हरिदासजी का परिक्रमा करके उनके चरणों को स्पर्श किया, और उन्होंने उनका माथा सूंघ कर आशीर्वाद दिया, और माता पिता ने भी ऐसाही

किया, थोड़ी देर पीछे हरिदासजी से पुंडरीक व दिग्विजय महाराज, गर्ग व उशस्ति ऋषि, मोहनी व लज्जावती महारानी का समागम हुआ, और उनकी बुद्ध भगवान् की सदृश शान्त और प्रसन्नचित्त मूर्ति को देखकर सब बड़े हर्ष को प्राप्त हुए, उनके हर एक अंग से कोमलता, दयालुता, सरलता, सुंदरता टपक रही थी, और उनमें आकर्षणशक्ति ऐसी बलवान् थी कि जैसे चुम्बक पत्थर अपने तरफ़ लोहमीन को खींच कर अपने में लगाये रहता है, वैसे ही सब के मनरूपी मीन हरिदासजी के शरीर से चिपट गये थे, सब के सब अवाच्य होगये, ईश्वर की रचना में मग्न थे, जब हरिदासजी ने उन करके अपने को कृतकृत्य होने का धन्यवाद दिया तब पुंडरीक महाराज ने यति के कहे हुए वाक्य को कहा, उसको श्रवण कर अश्रुधारा उनके नेत्रों से चल पड़ा, और वह दौड़कर उन सब के चरण पर गिर पड़े यह कहते हुए कि प्रियमित्रो ! आप धन्य हैं जिन्होंने परमात्मा से संभाषण किया, और उनका दर्शन पाया, आपसब कोई ब्रह्मतुल्य हैं, ऐसी ही प्रेम

से सनी हुई उन सब के तरफ़ से भी बातचीत होती रही, पुंडरीक महाराज ने परमात्मा के भजन और स्मरण करने के बारे में प्रश्न किया, उसके उत्तर में हरिदासजी यों कहते हैं।

" हे भगवन्! मेरी दृष्टि में तो ऐसा मालूम होता है कि ऊपर नीचे दाहिने बायें चारों ओर एक चैतन्य आत्मा सब शरीर में विलास कर रहा है, और मनुष्य को, जो सब जीवों में मन बुद्धि की शुद्धता के कारण श्रेष्ठ है, अपने वास्तविकरूप को हरदम दिखा रहा है; यदि कोई उसको न देखै तो उसका क्या दोष है, जैसे सूर्य भगवान् अपना प्रकाश जीवमात्र पर सम्यक् प्रकार डालते हैं यदि जातिका (चिमगोदर) उस प्रकाश को न देखै तो उनका क्या दोष है, अगर कोई मनुष्यकृत मन्दिर एक स्थान से दूसरे स्थान को मूर्ति सहित जो उसके अन्दर स्थापित रहती है चला जाय तो उस चलते हुए मन्दिर के देखने के लिये लाखों स्त्री, पुरुष, बालक, बालिका आनकर जमा होजायेंगे, और बड़े आश्चर्य को प्राप्त होंगे, और उसके अन्दर की

मूर्ति को बड़े सत्कार से पूजेंगे, पर ईश्वरकृत शरीररूपी मन्दिर जिसमें जीवरूपी शिव कल्याणकारक आनन्द-पूर्वक विराजमान है, अहर्निश कोसों तक चलाफिरा करता है, और इसीके भीतर एक और सूक्ष्म मन्दिर है जिसमें करोड़ों ब्रह्मा, करोड़ों विष्णु, करोड़ों महेश, करोड़ों सूर्य, करोड़ों चन्द्रमा, करोड़ों तारेगण, करोड़ों समुद्र, करोड़ों पहाड़, करोड़ों वृक्ष, करोड़ों जीव जन्तु, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, देव, दानव, मनुष्य आदिक प्रतिदिन भास आते हैं, और फिर तिरोभाव को प्राप्त हो जातेहैं, इसके हर एक द्वार याने इन्द्रिय पर अनेक अद्भुत कौतुक होरहे हैं, नेत्रद्वार को खोलिये संसार भरके बहुरंगी रूपों को देखिये, उसको बंद करिये कहीं किसी का पता नहीं, श्रोत्रद्वार को खोलिये मोहित करनेवाले शब्दों को सुनिये, उसीमें सब प्रकार का व्यवहार हो रहा है, उन इन्द्रियों के बन्द करते ही इस संसार का सारा व्यवहार बंद होजाता है, जिह्वा पर पदार्थ रखतेही वास्तविक रस का स्वाद मिलने लगता है, उस स्वाद के लिये लोग घर बार सब कुछ खो देते हैं, नासिकाद्वार पर

वस्तु के रखतेही उसके सुगंध का आनन्द मिलने लगता है, उस स्वाद के लिये देवता आदिक सब मतवाले हो रहे हैं, त्वक्इन्द्रिय आनन्द का घर है, इस करके उत्पन्न हुए सुख को गृहस्थलोग भलीप्रकार जानते हैं, इसके पीछे राजालोग राज्य को त्याग देते हैं, देवता पिशाच बन जाते हैं, वाणी ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से सत्संग करके कोटिन की मुक्ति करदेती है, वाणी बंद होते ही संसार के सब कार्य बंद हो जाते हैं, ऐसे इस अद्भुत शरीर के झरोखों में से जीवात्मा हृदयाकाश में बैठा हुआ बाहर भीतर सब दृश्यों का द्रष्टा होता हुआ मजा ले रहा है, पर ऐसे विस्मययुक्त शरीररूपी मंदिर को देख करके न कोई आश्चर्य को प्राप्त होता है, और न उसके अन्दर स्थित मूर्ति को कोई पूजता है, कारण यह है कि उस अद्भुत दृश्य को प्रतिदिन देखने से उसमें जो अपूर्वता है वह जाती रहती है, पर जो हरिभक्त हैं उन को प्रतिदिन वह दृश्य आनन्द का कारण बनता रहता है, चलने फिरनेवाले शरीरों को अन्न, जल, फल, फूल, द्रव्य, वस्त्र, आभूषण आदिक सत्कारपूर्वक देना यह

समझ कर कि ये सब उस चैतन्य आत्मा के लिये हैं जो उनके अन्दर स्थित है, और जिस करके उनका सारा व्यवहार हो रहा है ईश्वरपूजन है, यही ईश्वर की सेवा है, यही भजन है, इस सरल सेवा को अमीर ग़रीब विद्वान् अविद्वान् सभी करसकते हैं यदि चाहें, और सबों को बराबर फल मिल सकता है, राजा हज़ारों मनुष्यों को भोजन कराकर जो फल पा सकता है उसी फल को ग़रीब हज़ारों पक्षियों या चींटी आदिकों को अन्न जल देकर पा सकता है, क्योंकि जो चेतन आत्मा मनुष्यों के शरीरों में व्यापक होकर स्थित है वही चैतन्य आत्मा चींटी व पक्षी आदिकों के शरीर में भी स्थित है।

हे भगवन्! सच्चा प्रेम एक के साथ होता है दो के साथ नहीं, प्रेमी के मानसिक दृष्टि में प्रिय हरदम दिखाई देता है, उसके दुःख में दुःखी, और सुख में सुखी रहता है, पर यह दशा जीवसंबंधी प्रेम में होती है, ईश्वरसम्बन्धी प्रेम में प्रेमी सदा सुखी, सदा तृप्त, सदा मुक्त रहता है, क्योंकि उसका प्रिय परमात्मा आप्तकाम है, राग द्वेषरहित है, उसमें दुःख लेशमात्र नहीं,

एकरस ज्योंका त्यों है, इसी कारण जैसा प्रिय होता है वैसेही प्रेमी बन जाता है, ईश्वर का प्रेमी ईश्वरस्वभाव वाला हो जाता है, जिस पुरुष में यह लक्षण घटे उस को ईश्वर का भक्त जानिये, मुझ को यह भजन प्यारा है, सब को यह सरल भजन ईश्वर का प्यारा लगा।

हे पाठक जनो! मेरे साथ साथ चलिये, मकान के अन्दर स्त्रियों का हाल सुनिये, जिस समय चन्द्रकला ने अपने सास के चरणों में मत्था टेका, उसने बड़े प्यार से उसको छाती से लगाकर उसके मस्तक को सूंघा, और कहने लगी, हे पुत्रि! जैसे नदियों में गंगा, गौवों में कामधेनु, रत्नों में माणिक, तारागणों में चन्द्रमा, फूलों में कमल प्रतिष्ठित है, वैसे ही तू मेरे हंसरूपी वंश की स्त्रियों में पूज्य है, तूने क्षात्रियत्व धर्म का पताका भारत भर में खड़ा कर दिया है, और तेरी कीर्ति चारों तरफ़ लहरा रही है, यह तेराही काम था जिसने सूर्यमुखी पुष्प को मूल सहित दुष्टों से बचाकर मेरे घर के स्त्रीसमूहरूपी पुष्पवाटिका में लाकर लगा दिया है, और वह आज लज्जावती देवी के ज्येष्ठ पुत्र सूर्यकान्त

के सम्मुख बैठी है, और अपने इष्टा को हर्षित कर रही है, मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि तेरा गोद आगे पीछे दहिने बायें अनेक चन्द्रकान्त से भरा रहे, और वे पुत्र वैसे ही यश को प्राप्त होवैं जैसे उनके माता पिता बने इसके पीछे लज्जावती मोहनी और पुष्पवती देवियों ने चन्द्रकला को बहुत प्यार किया, और बार बार छाती से लगाय यह कहती हुई कि हे चन्द्रकला ! तू वीर-रस और भक्तिरस में अद्वितीय है।

इस प्रकार हँसी खुशी से चौमासा हरिदास महाराज के पास कटा जीवों की उन्नति देख करके सब बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए, कोई पहरे का काम देता है, कोई सिपाही का, कोई हरिदास जी के साथ चौसर खेलता है, किसी किसीने उनमें से ऐसी उन्नति की कि राम राम कृष्ण कृष्ण कहने लगे, वाह रे पुरुषार्थ क्या कहना है, तू क्या नहीं कर दिखाता है।

जब लज्जावती महारानी ने देखा कि सूर्यमुखी ब्राह्मण की कन्या को शूरवीरता बहुत प्रिय लगती है, और अपने पुत्र सूर्यकान्त में क्षत्रियत्वधर्म का अंश

विशेष है, और उसके तरफ़ करुणा के नेत्र से देखता है, अपने पति पुंडरीक महाराज और मोहनी से अपने अभीष्ट मनोरथ को प्रकट किया, वे दोनों बड़े सुख को प्राप्त हुए, और कहा कि यदि कन्या वर दोनों को आपस में स्त्री पुरुष बनने की इच्छा है तो हम लोगों को उचित यही है कि हम उनके आनन्द को देखें।

हे लज्जावती! तुम खुद शास्त्र की ज्ञाता हो, कन्या को वर उसकी इच्छा के अनुसार और वर को कन्या उसकी इच्छा के अनुसार होना चाहिये, देखो कृष्ण भगवान् ने अपनी बहिन सुभद्रा को अर्जुन के प्रति जो धर्मशास्त्र अनुसार उसका समीपी संबंधी लगता था, और जिसके साथ विवाह करना अनुचित था दे दिया, कारण यह था कि अर्जुन के समान कोई दूसरा वर सुभद्रा के योग्य संसार भर में न था उन्होंने सुभद्रा और अर्जुन का सुख मुख्य देखा, स्त्री और पुरुष के मध्य जो सुख होता है उसका अनुभव हम तुम दोनों कर चुके और करते हैं, यह बात हरिदास महाराज से कही गई उन्होंने बहुत पसन्द किया, और जिस समय

सूर्यमुखी कन्या के पिता कौशल से कहा गया उन्होंने अपने को बड़ा भाग्यशाली समझा, और सब को धन्यवाद दिया कार्तिक के शुक्लपक्ष में बड़े धूम धाम से सूर्यमुखी कन्या का विवाह सूर्यकान्त महाराज के साथ हुआ, और वह राजा चन्द्रकान्त करके अर्पण किये हुए आभूषणों से ऐसी आभूषित हो गई कि उसका मुख सूर्य को भी लजाता था, कर्म की गति निराली है, प्रारब्ध जो कर्मों का फल है दुरविज्ञेय है, कोई नहीं जानता है कि उसके कर्म में क्या लिखा है, यह अपना फल अवश्य देता है, इसने रंक को कुबेर कर दिया है, और कुबेर को भिक्षुक बना दिया है, चाण्डाल को आचार्य और आचार्य को चाण्डाल कर दिया है, किसी योनि में जीव जावे यह वहीं पर अपना फल दिखला देता है, यदि सूर्यमुखी कन्या का भाग्य ऐसा उदय हो आया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, लज्जावती महारानी अपनी अनोखी बहू को देख कर अति प्रसन्न हुई, और बहुत कुछ दान याचकों को दिया, उसके नाम से बहुतेरे पाठशाले, चिकित्सालय, धर्मशालायें आदि खोले

गये, सूर्यकान्त और सूर्यमुखी ऐसे अच्छे और प्रिय दि-
खाईदेते हैं जैसे शिव पार्वती अरण्यविषे दिखाई देते थे।

एक समय सायंकाल को नर्मदा नदी के किनारे पर राजा चन्द्रकान्त और रानी चन्द्रकला एक स्फटिक शिला पर बैठेहुए आनन्द की बातचीत कर रहे थे कि इतने में कपोत और कपोती दिखाई पड़े, उनको देख कर राजा रानी को उनके पुरुषार्थ और पुरुषार्थ के फल का स्मरण हो आया, और विवाह के सुख में उनको भूल करअपने कृतघ्नता पर शोक किया, यह कहते हुए कि हे प्रिय कपोत, कपोती ! यह आनन्द जो आज हम दोनों को परस्पर मिल रहा है उसके कारण तुम दोनों हो, तुम्हारे अप्रमत्तता स्वामिभक्ति और अनुरागिता को हमलोग भूले नहीं हैं।

अब बताओ, तुम दोनों क्या चाहते हो, हम तुम्हारे वाञ्छित वर को देवेंगे इसके उत्तर में वे कहते हैं कि हमलोगों ने अपना सेवकधर्म किया है, यदि आप हम दासों पर प्रसन्न हैं तो किसी प्रकार का दुःख पक्षी-मात्र को न मिले, और हमारे जाति के पक्षी यानी

कपोतमात्र सब स्वतंत्र रहें, और उनके अन्न जल का प्रबन्ध भली प्रकार राज्यभर में कर दिया जावे, और उनकी उन्नति के लिये उनको यथायोग्य विद्या प्रदान किया जाय, हे राजन्! हम को स्वार्थी न समझना, हर एक जीव का धर्म है कि अपने जातिवाले की भलाई को हाथ से न जाने देवे, और उनको स्वतंत्र बनाने के लिये प्रयत्न करे, क्योंकि संसार में स्वतंत्रता सुख का और परतंत्रता दुःख का कारण है राजा रानी ने कहा तुम्हारी इच्छा को हम पूर्ण करेंगे, और तुम दोनों हम को सदा प्यारे रहोगे, और तुम्हारा ऋण हमारे ऊपर इतना भारी है कि हमलोग कभी उससे उद्धार नहीं होसकते हैं, जब नदी से वापस आये राजमंत्री को बुलाकर पक्षीमात्र के सुखनिमित्त आज्ञा दिया और कपोतजातिवाले पक्षी को जैसे कपोत कपोती ने इच्छा की थी वैसेही कियागया।

मनुष्य को चाहिये कि अपने देश की उन्नति के लिये कपोत कपोती के उदाहरण को अपने हृदय में सदा रक्खै, और उसके अनुसार बरते, यह कालचक्र दिन

रात चला करता है, क्षण क्षण में नदी के प्रवाह की तरह पीछे से निकला हुआ आगे को चला जाता है, कोई उसके पकड़ने को आज तक समर्थ नहीं हुआ है कहां से आता है, और कहां जाता है किसी को मालूम नहीं होता है इसीके आधीन सारे विश्व का व्यवहार होरहा है, काल पाकर गर्भ की स्थिति होती है, कालही परपुत्र उत्पन्न होता है, कालही पर युवावस्था को प्राप्त होता है, और कालही पाकर वृद्ध होकर मृत्यु का ग्रास बन जाता है, कालही के आश्रय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, धनेश, गनेश आदिक देवता हैं, काल का उल्लंघन करने वाला कोई नहीं है, काल की गति निराली है, काल भगवान् को वारंवार प्रणाम करना मनुष्यमात्र को उचित है, जिस काल के आश्रय होकर यह राजमंडली, व ऋषिमंडली ने एकत्र होकर हँसीखुशी में इतने दिन व्यतीत किये, अब वही काल आन पहुँचा है जिस की प्रेरणा से सब छितराबितर हो जावेंगे, जैसे ब्रीहि आदिक अन्न एकही खेत में उत्पन्न होकर काल करके कोई पूर्व को, कोई पश्चिम को, कोई दक्षिण को, कोई

उत्तर को चले जाते हैं वैसेही मनुष्य भी काल करकेही छितर बितर हो जाते हैं यह कालही है जो पुत्र को पिता से, स्त्री को पति से संयोग कराता है, और वियोग भी कराता है, जब सभा करते करते समस्त भारतभूमि की उन्नति का प्रबन्ध होचुका, और देश देशान्तर से खबर आई कि कार्य का आरंभ होगया है, राजाओं के हृदय में प्रेरणा उठी कि अब अपने अपने राजधानी को चलना, और राज्यकार्य करना चाहिये शुभ दिन जाने का निश्चित किया गया, चिन्ता आन खड़ी हुई हर्ष ने थोड़े दिनों के लिये प्रस्थान कर दिया सब के मुख पर मलीनता छा गई, वाह री प्रकृति, तू अपना असर कुछ न कुछ सब को दिखा देती है, चाहे ज्ञानी हो, चाहे अज्ञानी हो, ज्ञानी को अल्पकाल तक, अज्ञानी को दीर्घकाल तक, पर तू किसी को नहीं छोड़ती है, भीष्म महाराज सरीखे शूरवीर, ज्ञानी, पराक्रमी, जिसके ऊपर मृत्यु भी आक्रमण नहीं कर सकती थी, पांडु के मृतकशरीर को देख करके बेहोश होकर पृथ्वी पर गिरपड़े, भारत के युद्ध में जब द्रोणाचार्य महाराज ने युधिष्ठिर महाराज से

सुनाकि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया वह रथ पर से पृथ्वी पर गिरपड़े, और शरीर का त्याग किया।

श्रीरामचन्द्रजी ज्ञानस्वरूप परमात्मा समझे जाते हैं, अपनी पत्नी सीताजी के वियोग से विकल होकर वन में रोते फिरते रहे, और उन्मत्त होकर वृक्षों से पूछते थे हे मित्रगणो ! क्या तुमने कहीं मेरी प्राणप्यारी सीता को देखा है, श्रीवशिष्ठ महाराज जो ज्ञान के खानि थे, और ब्रह्मविद्या के प्रकट होनेके स्थान समझे जाते हैं पुत्र के शोक में आत्महत्या करने के लिये कई बार यत्न किया हे माया ! किसको तूने हलचल में नहीं डाल दिया है। जब नैपालनरेश, पुंडरीक, व दिग्विजय महाराज, और और देशों के राजालोगों ने लड़कों बालों सहित, राजा चन्द्रकान्त, और रानी चन्द्रकला और उनके माता, पिता, और साई हरिदासजी के समीप आनकर विदा होने की आज्ञा मांगी, उस समय का दृश्य करुणा का सागर होरहा था, सबके नेत्रों में प्रेम के शुद्ध जलबिन्दु मुक्ताफल की सूरत में लटके हुए भासते थे, और जिनके मुखकमल से कमलवत् प्रिय वाणी लगातार निकल करके श्रोतों के हृदय को आनन्दित

करती थी, आज वही मूक होकर चित्र सरीखी खड़ी है, हे शारदा देवि ! क्या तू भी इस वियोग से विकल होकर भाग गई है, मित्रगण, और सम्बन्धीगण ने चुपचाप मिल कर अपने अपने देश की राह ली, कुछ दूर तक तो सब मुख फेर फेर करके चन्द्रकान्त, चन्द्रकला और हरिदास जी के तरफ़ देखते रहे, पर जब नेत्र की शक्ति में अशक्ति आई मन जो सब इन्द्रियों का राजा और अतिप्रबल है, आन खड़ा होगया, उस समय सब इन्द्रियां और स्थूलशरीर तो आगे को बढ़े जाते हैं पर मनका लगातार धार का प्रवाह अर्जुन के बाणवत् अपने लक्ष्य हरिदासजी के तरफ़ चला जा रहा है, दिन व्यतीत होगये, पक्ष व्यतीत होगये, महीने गुजर गये पर लोगों के मन का प्रवाह वैसेही जारी है, वाह रे, सच्चा प्रेम ! तेरी बराबरी कौन कर सकता है अब तू अपनी आकर्षणशक्ति को रोक ताकि सबको शान्ति मिले, शान्ति लेनेके लिये शान्ति देनेवाली श्रीगंगामहारानी के तट पर रहने को मेरी भी इच्छा हो रही है, हे श्रोतावो ! अब कुछ कालके लिये जाइये, फिर देखा जायगा ।

इति ॥

निम्न लिखित पुस्तकें रायबहादुर बाबू जालिमसिंह
कृत टीका सहित विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं.

भगवद्गीता सटीक १ भाग	१=)
तथा २ भाग	१)
अष्टावक्रगीता सटीक	१।)
रामगीता सटीक	॥।)
ईशावास्य उपनिषद् सटीक	=)
केनोपनिषद् सटीक	=)॥
कठवल्ली उपनिषद् सटीक	॥)
प्रश्नोपनिषद् सटीक	।=)
मुण्डक उपनिषद् सटीक	।=)
मांडूक्योपनिषद् सटीक	=)
तैत्तरीयोपनिषद् सटीक	॥।)
ऐतरेयोपनिषद् सटीक	॥।)

मिलने का पता—
रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायण भार्गव,
मालिक नवलकिशोर प्रेस—लखनऊ